Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

11·1

ीय-धर्मशास्त्रम्

लेखकः—

चूडामणिशास्त्री शाण्डिल्यः

प्रकाशकः—

केदारनाथ शर्म्मा सारस्वतः

मन्त्री, भारतीय-संस्कृति-सम्मेलन, काशी

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

भा॰पु॰

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

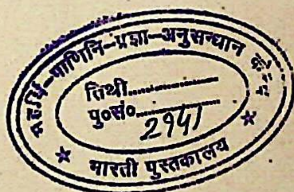
भारतीय-धर्मशास्त्रम्

श्री कमला प्रसाद आर्य को
समर्पित
ह॰ शा॰

श्री कमला प्रसाद जी आर्य
(पटना)

लेखकः—

चूड़ामणिशास्त्री शाण्डिल्यः



प्रकाशक :—

केदारनाथ शर्म्मा सारस्वतः

मन्त्री, भारतीय-संस्कृति-सम्मेलन, काशी

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुद्रक—बी० के० शास्त्री,
ज्योतिष प्रकाश प्रेस, बनारस ।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राक्कथन

प्रस्तुत पुस्तक मुलतानसे प्रवासी हुए श्री पंडित चूडामणि शास्त्री शांडिल्यने प्राचीन आर्यधर्मशास्त्रीय-ग्रन्थोंका मन्थन करके लिखी है।

हमारी संस्कृतिपर मध्यकालीन मूढग्राहोंके कारण जो धुँधलापन छागया है, उसे हटाने तथा प्राचीन संस्कृतिके विशुद्ध रूपको प्रकट करनेके लिये वेद और धर्मशास्त्रके वचनोंकी सच्ची व्याख्या करके साहसका परिचय दिया है।

भारतीय-संस्कृति-सम्मेलनने इस विश्वाससे यह पुस्तक प्रकाशित की है कि यह हमारे समाज की सामयिक समस्याएँ सुलझानेमें उपयोगी सिद्ध होगी।

— प्रकाशक


महर्षि-पाणिनि-प्रज्ञा-अनुसन्धान केन्द्र
तिथी
पु०सं० २५५१
भारती पुस्तकालय

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ग्रन्थका उद्देश्य

वेदैः शास्त्रैः प्रमाणैश्चेतिहासैः साक्षिभिस्तथा ।
शाण्डिल्यधर्मशास्त्रस्य निर्णयः परिपोषितः ।
राष्ट्रतज्जातितद्धर्मरक्षामुद्दिश्य निर्मितः ।
अस्योद्देशस्य पूर्तिस्तु प्रभोरादेशतो भवेत् ॥

यह धर्मशास्त्र, भारतराष्ट्र, भारतीयजाति, भारतीयधर्म और भारतीय संस्कृतिको सुरक्षित रखने—इसे ऊँचे स्तरमें लेजाकर बलशाली बनाने के लिये बनाया गया है। इसे प्रामाणिक रूप देनेके लिये इसमें वेद, स्मृति, इतिहास और विद्वानोंकी साक्षियाँ पर्याप्त रूपमें दी गई हैं। श्रीप्रभु इसमें सफलता प्रदान करें।

शाण्डिल्य

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतीयं धर्मशास्त्रम्

(शाण्डिल्यधर्मशास्त्रनिर्णयः)

भारतीय-भारत्या समन्वितम्



प्रथमो भागः

मङ्गलाचरणम्

ॐ विश्वानि देव ! सवितर्दुरितानि परासुव ।
यद् भद्रं तन्न आसुव । यजुः ३०।३ ।

हे सम्पूर्ण जगत्को उत्पन्न करनेवाले प्रकाशरूप परमेश्वर ! आप, हमारे जीवनमें आनेवाली सभी विघ्नबाधाओंको दूर करो। जो कल्याण और सुख है अथवा जो कल्याण और सुखको प्राप्त करनेके साधन हैं उनको हमें प्राप्त कराओ। जिनसे हम अपना और अपने राष्ट्रका दुःख दूर करते हुए अपनेको और अपने राष्ट्रको सुख—सम्पन्न बना सकें। इसमें आध्यात्मिक सुखको 'कल्याण' और विषय जन्य सुखको 'सुख' माना गया है।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ग्रन्थका उद्देश्य

वेदैः शास्त्रैः प्रमाणैश्चेतिहासैः साक्षिभिस्तथा ।
शाण्डिल्यधर्मशास्त्रस्य निर्णयः परिपोषितः ।
राष्ट्रतज्जातितद्धर्मरक्षामुद्दिश्य निर्मितः ।
अस्योद्देशस्य पूर्तिस्तु प्रभोरादेशतो भवेत् ॥

यह धर्मशास्त्र, भारतराष्ट्र, भारतीयजाति, भारतीयधर्म और भारतीय संस्कृतिको सुरक्षित रखने—उसे ऊँचे स्तरमें लेजाकर बलशाली बनाने के लिये बनाया गया है। इसे प्रामाणिक रूप देनेके लिये इसमें वेद, स्मृति, इतिहास और विद्वानोंकी साक्षियाँ पर्याप्त रूपमें दी गई हैं। श्रीप्रभु इसमें सफलता प्रदान करें।

शाण्डिल्य

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतीयं धर्मशास्त्रम्

(शाण्डिल्यधर्मशास्त्रनिर्णयः)

भारतीय-भारत्या समन्वितम्



प्रथमो भागः

मङ्गलाचरणम्

ॐ विश्वानि देव ! सवितर्दुरितानि परासुव ।
यद् भद्रं तन्न आसुव । यजुः ३०।३ ।

हे सम्पूर्ण जगत्को उत्पन्न करनेवाले प्रकाशरूप परमेश्वर ! आप, हमारे जीवनमें आनेवाली सभी विघ्नबाधाओंको दूर करो । जो कल्याण और सुख है अथवा जो कल्याण और सुखको प्राप्त करनेके साधन हैं उनको हमें प्राप्त कराओ । जिनसे हम अपना और अपने राष्ट्रका दुःख दूर करते हुए अपनेको और अपने राष्ट्रको सुख—सम्पन्न बना सकें । इसमें आध्यात्मिक सुखको 'कल्याण' और विषय जन्य सुखको 'सुख' माना गया है ।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपक्रमः

कलौ पञ्चसहस्राब्द्यां विक्रमे द्विसहस्रके—
गते, तदा महान् घोरो ध्वंसकालः समागतः ॥ १ ॥
तदा यवनजातीया वृद्धिं गत्वा समन्ततः ।
अकुर्वन् आर्य-विध्वसं धर्म-लोपं तथैव च ॥ २ ॥

जब कलियुगकी ४३२००० वर्षोंकी आयुमें पाँच सहस्र छियालीस वर्ष समाप्त हो चुके और विक्रमादित्यके राज्यको दो सहस्र और तीन वर्ष बीत चुके तब अर्थात् संवत् २००३ और ईसवीय सन् १९४६ में महाभयानक नाशकारी समय उपस्थित हुआ। चारों ओर बढ़ते हुए यवनगण आक्रमण करके आर्य्य-जाति और आर्य्य-धर्मको नष्ट करने लगे अर्थात् आर्य्योंको मारकर समाप्त करने लगे अथवा उन्हें बलपूर्वक विधर्मी बनाने लगे और आर्य्य-महिलाओंका सतीत्व नष्ट करते हुए तथा उन्हें बलपूर्वक विधर्मी बनाते हुए उनका अपहरण करने लगे।

अस्मिन् घोरे ध्वंसकाले जातिरक्षा कथं भवेत् ?
इति प्रश्ने समुत्पन्ने शाण्डिल्यो धर्मतत्त्ववित् । ३ ॥
भूयो भूयो विमृश्यैवं निर्णयं व्यदधाद् ध्रुवम्
आर्यजाते रक्षणाय धर्मशास्त्रं प्रणीयताम् ॥ ४ ॥

ऐसे महाभयानक विनाशकारी समयमें जातिरक्षा किस प्रकार की जाय ? जब यह प्रश्न सामने आया तो प्रभुकी कृपासे धर्मका तत्त्व जाननेवाले शाण्डिल्यगोत्रोत्पन्न चूड़ामणि शाण्डिल्य

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शास्त्रोंने कई बार सोच विचारकर अन्तमें यह निर्णय किया कि आर्य्यजातिको नैतिक बल देकर उसे आत्मनिर्भर बनानेके लिये एक प्रामाणिक धर्मशास्त्र बनाना चाहिये।

प्रश्नः—मन्वादिधर्मशास्त्रेषु विद्यमानेषु किं पुनः।
शाण्डिल्यधर्मशास्त्रस्य निर्णयोऽयं प्रणीयते ॥ ५ ॥

यहाँ पर यह प्रश्न उपस्थित होता है कि—जब कि मनुस्मृति आदि धर्मशास्त्र विद्यमान थे, तब इस 'शाण्डिल्यधर्मशास्त्र निर्णय'के निर्माणकी आवश्यकता ही क्या थी?

उत्तरम्—इमे ग्रन्था यदाऽभूवन् आर्य्याः सर्वे बलान्विताः।
अनार्य्याः प्रबला नासन् आर्य्यजाति—विनाशकाः ॥६॥

एतादृशीं स्थितिं प्राप्य तैरुग्रा नियमाः कृताः।
आदर्शवादस्तैर्दृष्टो यथार्थस्तु न चाऽऽदृतः ॥७॥

तस्माद् येऽपि गुणा आसन् दोषत्वं ते गतास्तदा।
कालान्तरेऽपरे दोषा अपि शास्त्रेषु सङ्गताः ॥८॥

यद् वशाद् आर्य्यजातिस्तु क्षीणा जाता शनैः शनैः।
अनार्य्याः शासका जाता आर्य्यास्तच्छासिताः स्थिताः ।९।

फलतोऽद्याऽनार्य्यजात्या शक्तिं सञ्चित्य सर्वतः।
आर्य्यदेशे निषद्यापि तं भङ्क्तुं प्रक्रमः कृतः ॥१०॥

पूर्वकाले तु भूगोले आर्य्य-राज्यम् अविद्यत।
पश्चात्तु जम्बुद्वीपेऽस्मिन् समग्रे तदविद्यत ॥११॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इदानीं क्षीणतां गच्छद्‌ ईदृशीं क्षीणतां गतम्‌ ।
यस्मादस्मा चावशिष्ट आर्य्यावर्त्तोऽपि खण्डितः ॥१२॥
तस्मात्‌ तद्दोषनाशाय चार्य्यशक्तिप्रवृद्धये ।
शाण्डिल्येनाऽस्य शास्त्रस्य निर्णयः संप्रणीयते ॥१३॥

इसका उत्तर यह है कि—जब मनुस्मृति आदि धर्मशास्त्र बने थे तब सभी आर्य्य इतने बलवान्‌ थे, किसी दूसरी जातिसे दबनेवाले न थे। तब अनार्य्य भी थे—जिन्हें दस्यु भी कहा जाता था, पर वे जहाँ आर्य्योंसे संख्यामें न्यून थे, वहाँ शक्तिमें भी वे इतने प्रबल न थे कि आर्य्यजाति या आर्य्यधर्मका नाश कर सकते। इस प्रकार अनुकूल परिस्थितिको पाकर आर्य्यविद्वानोंने आर्य्यजातिको उन्नत बना रखनेकी भावनासे बड़े उग्र नियम बनाये। इन्होंने आदर्शवादको तो देखा कि आर्य्यजाति इस आदर्शपर चलकर उन्नत हो सकेगी। परन्तु यथार्थवादको कुछ भी महत्त्व न दिया—प्रत्युत अवहेलना ही की। तब यह न सोचा गया कि ये उग्र नियम निभाये भी जा सकेंगे या नहीं। अतः तब जो नियम, 'गुण' समझे गये थे वे शनैः शनैः दोषरूपमें परिणत होते गये। इस प्रकार कुछ कालके बाद और भी कई दोष इन शास्त्रोंमें आते रहे। इन दोषोंका आगे चलकर परिणाम यह निकला कि आर्य्यजाति धीरे धीरे क्षीण होती चली गई। वह परिणाम आगे चलकर और भी अधिक हानिकारक प्रमाणित हुआ जब कि विदेशी अनार्य्यगण

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आर्य्यों पर शासन करने लगे और आर्य्य उनके शासनके नीचे आते गये। उनके शासनकालमें स्वभावतः आर्य्योंसे पद-दलित हुए शूद्र और द्विजोंमें भी कुछ तो उन शासकोंके प्रभावमें आकर, कुछ पराजित वृत्तिमें आकर और कुछ उनके बलात्कारसे दबाये जाकर उच्च कुलवाले आर्य भी अनार्य होते गये। इससे जहाँ उनकी सीमातीत वृद्धि होने लगी वहाँ आर्य्योंकी जनसंख्यामें बहुत ही ह्रास होने लगा, जिसका अन्तिम परिणाम इतना घातक हुआ, जिससे आज अनार्य्य-जातिने इतनी शक्ति सञ्चित करली है कि—आर्य्य देशमें बैंठ कर भी अपनी बहुसंख्याके आधारपर उसे खण्ड-खण्ड करनेमें वह सफल हो गयी ॥ १० ॥ हमें महान खेद तो यह है कि प्राचीनकालमें जिस आर्य्यजातिका राज्य सारे भूमण्डलमें विद्यमान था, अन्तमें वही राज्य केवल जम्बुद्वीपमें शेष रह गया और अब वह क्षीण होते-होते इतना क्षीण होगया है कि जितना अवशिष्ट-आर्य्यावर्त सुरक्षित रह गया था; आज वह भी तीन खण्डोंमें विभक्त कर दिया गया है। इसके दो खण्डोंमें अनार्य्य-शासन चल रहा है और तीसरे भागमें आर्य्य-शासन शेप रह गया है। हमारे सार्वभौम-शासनकी साक्षीमें ब्रह्माण्डपुराणमें लेख मिलता है कि चक्रवर्ती सम्राट् प्रियव्रतके दस पुत्र थे। जिनमें तीन संन्यासी हो गये थे। शेष सात पुत्रोंको सात द्वीप (जम्बु, शक, कुश, क्रौञ्च, शाल्मलि, प्लक्षऔर पुष्कर) राज्य चलानेके लिये दिये गये थे, जिनमें समग्र भूमि आजाती है।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इनमें जम्बुद्वीप आग्नीध्रके भागमें आया। इसके नौ पुत्र थे। आग्नीध्रने इस द्वीपको नौ भागोंमें विभक्त करके एक-एक खण्ड एक-एक पुत्रको दे दिया। इस प्रकार उस समय समूचे एशियामें आर्य्यराज्य था। फिर नाभीके पुत्र भरतने इस 'हिमाह्व' प्रदेशका नाम अपने नामसे स्थिर किया। जिसका नाम 'भारतवर्ष' रक्खा गया। आज वह अवशिष्ट देश भी खण्डित हो गया !'

बस, इस हानिको देखकर शाण्डिल्यशास्त्रीने आर्य्यजातिको क्षीण करनेवाले उन उन दोषोंको दूर करने और उसे वैदिक आदर्शके अनुसार चलाकर आर्य्यधर्म और आर्य्यशक्तिकी पुनः वृद्धिके लिये एवं मानवमात्रका कल्याण स्थिर करनेके लिये इस शाण्डिल्य-धर्म-शास्त्र निर्णयका प्रणयन किया है।

जो दोष आर्य्यजातिको क्षीणकर चुके हैं उनका संक्षिप्त विवरण नीचे दिया जाता है—

(१) वर्णोंमें सवर्ण और असवर्णका भेद करके असवर्णोंका मानवीय अधिकार छीनना।

(२) जीविकार्थ या सेवार्थ मानवके अस्पृश्यकर्म करने पर उसे सदाके लिये अस्पृश्य मानना।

(३) शूद्रों और स्त्रियोंको वेदाध्ययनाधिकारसे वञ्चित रख कर वेदोंको केवल जन्ममूलक द्विजोंके लिये ही नियन्त्रित करना।

(४) वर्णव्यवस्थाको केवल जन्ममूलक मानना या जन्मको प्रधानता देना।

(५) विधवा-विवाहके वेदानुमोदित होनेपर भी उसे दूषित सिद्ध करना।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(६) मौसी, फूफी और मामाकी कन्याके साथ विवाहके शास्त्रोक्त सिद्ध होनेपर भी उसे अशास्त्रीय अत एव पापजनक बतलाना।

(७) यज्ञोंमें अवैदिक पशुवधको वैदिक सिद्ध करना।

(८) देवों और पितरोंके निमित्त मांसबलिको धर्म्य स्वीकृत करना।

(९) सबके हाथका भोजन करनेकी शास्त्राज्ञा होनेपर भी शूद्रोंके हाथका भोजन करनेमें अधर्म समझना। एवं कच्चा-पक्का सखरा-निखरा आदि भोजनोंके भेद बनाना।

(१०) ब्राह्मणोंमें गौड़, सारस्वतादि भेद और वैश्योंमें अग्रवाल, ओसवाल आदि जाति-उपजाति भेद करके उनमें परस्पर विवाह भोजनादिको दूपित कहना आदि। इस धर्मशास्त्रके पढ़नेसे सबको यह ज्ञात हो जायगा कि ये दोप, वस्तुतः दोष हैं और इनका दूर करना अत्यावश्यक है।

धर्मतत्त्वं च यत्नेन प्रभुभक्त्याऽत्र संचितम्।
तत् सर्वं धारणीयं स्यादिति सत्यं वदत्यसौ ॥१४॥

शाण्डिल्यशास्त्रीने प्रभुभक्तिके द्वारा जो जो धर्म विषयक तत्त्व प्राप्त किये हैं और जो जो धर्म, देश, काल और परिस्थिति के अनुसार उसने प्रभुकी प्रेरणासे प्रकाशित किये हैं उन सम्पूर्ण धर्मोंको धारण करना चाहिये। वह सत्य भावनासे—उन्नतिकारक विचारोंसे—प्रेरित होकर ही यह वचन कहता है॥

इत्युपक्रमः

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अथ देश-जाति-धर्म-रक्षा प्रकरणम्

आ समुद्रात्तु वै पूर्वादासमुद्रात्तु पश्चिमात् ।
काश्मीराच्च कुमार्य्यन्त आर्य्यावर्तो बुधैर्मतः ॥१॥

प्राचीन समयमें आर्य्यराज्यके बहुत दूर प्रदेशों तक व्यापक होनेपर भी इतनी सीमा तो अवश्य थी कि पूर्वदिशाके समुद्रसे लेकर पश्चिमदिशाके समुद्र तक और काश्मीरसे लेकर कन्या-कुमारी तक वह सीमा चली गयी थी। इस सम्पूर्ण विस्तृत भू-भाग-को विद्वान् लोग 'आर्यावर्त' कहते चले आये हैं। श्रीमनुजीने भी २।२२ में ऐसा ही माना है। उसमें जो हिमालय और विन्ध्याचल के मध्यभागको 'आर्य्यावर्त' माना है वह विन्ध्याचल दक्षिणके मध्यका न लेकर समुद्रतटवर्ती ही विन्ध्याचल लेना चाहिये। श्रीवा० रा० में ६० सर्गके ७वें श्लोकमें इसीका वर्णन मिलता है। अतः तीनों भागोंमें समुद्र पर्यन्त भूमिभागको ही 'आर्य्यावर्त' मानना चाहिये। भारतवर्षके संक्षिप्त भू-भागको 'आर्य्यावर्त' मानना भूल है। ब्रह्माण्डपुराणके अनुसार ३४।३५ में नाभिके पुत्र भरतने इसे अपने नामसे प्रसिद्ध किया, अतः इसका दूसरा नाम 'भारतवर्ष' भी हुआ। ये दोनों नाम अपने-अपने स्थान पर पृथक्-पृथक् महत्त्व रखते हैं।

सृष्टेरारम्भतो ह्यार्य्यजातेरासीन् निवासभूः ।
अयमार्य्यावर्त एव तस्मादार्य्यैर्हि रक्ष्यताम् ॥२॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वेदे सिन्धोर्विपाशश्च शतद्र्वा वर्णनाद् त्रयम् ।
इति निश्चिनुमो देश आर्य्यैः स्वीयः स्थिरीकृतः ॥३॥

सृष्टिके आरम्भसे ही 'आर्य्यावर्त' आर्य्यजातिका निवास स्थान रहा है। अतः इसकी रक्षा करना आर्योंका मुख्य कर्तव्य है॥ २॥ वेदमें सिन्धु (सिन्ध) विपाश् (व्यासा) शतद्रु (सतलज) इरावती (रावी) वितस्ता (झेलम) आदि नदियोंका वर्णन मिलनेसे अथवा वेदमें आये हुए इन नामोंके आधारपर आर्य्यों द्वारा भारतकी नदियोंके नाम रखनेसे निश्चय होता है कि आर्य्योंने आरम्भसे ही—वैदिक कालसे ही इस देशको 'अपना देश' माना है, ऐसी हमारी दृढ़ धारणा है। जो विद्वान् यह कहते हैं कि 'आर्य्य उत्तरीध्रुवसे यहाँ आकर बसे हैं।' यह मत उक्त प्रमाणसे खण्डित हो जाता है। अनेक विद्वान् तो यहाँ तक कहते हैं कि वेदोंका निर्माण भी सिन्धुतटपर हुआ था, इसके साक्ष्यमें वे सिन्धी और मुलतानी भाषाका संस्कृतसे इतना सान्निध्य प्रकाशित करते हैं कि उक्त वातके मान लेनेमें यह प्रवल युक्ति वन जाती है। इधर वेदमें सिन्धुका वर्णन भी प्रचुरमात्रामें मिलता है। अतः आर्योंका यह द्वीप आदि कालसे अथवा अनिश्चित अतिप्राचीनतमकालसे अपना निवास स्थान चला आया है। भला, इस प्रकार हम आत्मगौरव रखनेवाले आर्य्य सदाके लिये परहस्तगत आत्मीय देशको कैसे सहन कर सकते हैं ?

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ये आर्य्याः पूर्वकाले वै आर्य्यनाम्ना सुविश्रुताः ।
त एव पश्चाद् वैदेश्यैर्हिन्दवः खलु भाषिताः ॥४॥
सिन्धोरवारपारीणा जना वैदेशिकैस्तदा ।
सिन्धवो हिन्दवः प्रोक्ता लोकेऽपि ख्यातिमागताः ॥५॥
तस्मादार्य्य इति प्राच्यं नाम बोध्यं स्वशास्त्रतः ।
हिन्दुरित्यभिधानं च लोकदृष्ट्या हि विश्रुतम् ।६।

जिन आर्योंको पूर्वकालमें सभी लोग (स्वदेशी और विदेशी भी) 'आर्य्य' ही कहते थे और इसी नामसे वे समस्त भूमण्डलमें विख्यात थे। अनन्तर आक्रमणकारी विदेशियों ने हम आर्योंको 'हिन्दु' इस नामसे पुकारना आरम्भ कर दिया। तब हमने भी पराजित होनेकी दशामें, दासवृत्तिमें आकर इस नामको अपना लिया और इस नामको शास्त्रीय सिद्ध करनेके लिये हम युक्तियाँ ढूंढने लगे, परन्तु वास्तविक ऋषिकृत 'आर्य्य' इस नामको भूल गये ॥४॥ क्योंकि सिन्धु-नदीके आरपार रहनेवालोंको वे लोग 'हिंन्दु' कहने लगे, बस, इस सिन्धुके कारण हमारा 'हिन्दु' नाम प्रसिद्ध होता गया। यहां पर 'स' को 'ह' के रूपमें बोलना विदेशियोंकी ही स्वाभाविक प्रवृत्ति थी। वे 'सप्तसिन्धु' को 'हफ़्तहिन्दु' और 'सप्ताह' का 'हफ़्तः' अपने स्वभावसे अबतक भी बोलते आ रहे हैं। अतः यह अपभ्रंश विदेशियोंका ही है, भारतीय आर्योंका नहीं। भारतीय तो अब भी सिन्धुको 'सिन्धु' और सिन्धुदेशके निवासियोंको

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'सिन्धी' ही कहते हैं। यदि यह हमारा अपभ्रंश होता तो हम इन्हें और नहीं तो सिन्धीके स्थानमें 'हिन्दी' तो कहते ? अनेक विद्वान् 'सरस्वती' और 'हरस्वती' 'असुर' और 'अहुर'को देखकर 'सिन्धु' और 'हिन्दु' को भी भारतीय नामान्तर सिद्ध करनेका व्यर्थ प्रयत्न करते हैं। यतः जैसे ये दो नाम हैं या ऐसे और कुछ शब्द भी हों, पर वे सबके सब दोनों रूपोंसे आर्य्य-ग्रन्थोंमें मिलते तो हैं ? पर 'हिन्दु' नामतो उन नामोंके साथ न वेदोंमें, न ब्राह्मणोंमें, न सूत्रग्रन्थोंमें और न किसी प्राचीन साहित्यमें कहीं मिलता है, प्रत्युत सर्वत्र आर्य-शब्दका ही प्रयोग मिलता है। हां, 'सिन्धु' यह नाम तो नदीके अर्थमें और कहींपर सिन्धु प्रान्तवासियोंके अर्थमें भी मिल जाता है। वह 'सिन्धु' नाम भी सारे भारतीयोंके नामसे कहीं भी नहीं मिलता। अतः 'हिन्दु' यह नाम ऋषिकृत नहीं है। इस देशके यवनाक्रान्त होनेके पश्चात् बने हुए ग्रन्थोंमें यह नाम अवश्य पाया जाता है, क्योंकि तब हमने इस नामको अपना बना लिया था; जोकि हमारी दासताका सूचक था ॥ ५ ॥ इसलिये हमें अपना नाम 'आर्य' ही मानना चाहिये, 'हिन्दु' यह नाम तो लौकिक दृष्टिसे या राजनैतिक दृष्टिसे माना जा रहा है। पर धार्मिक और ऐतिहासिक दृष्टिसे तो 'आर्य्य' ही था और है। इसपर राजा भरतका सार्वभौम शासन होनेसे इसका 'भारतवर्ष' यह नाम भी अत्यन्त प्राचीन है—यह हम पहले कह आये हैं। अतः अनेक महानुभाव इसके निवासियोंको—'भारतीय' यह नाम देना चाहते

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं। ऐसा करनेसे हमारा सांस्कृतिक नाम तो अवश्य ठीक हो जायगा, परन्तु हमारी ऐतिहासिकता विलुप्त हो जायगी। जो गुण या गौरव 'आर्य्य' इस नाममें है वह 'भारतीय' इस नाममें कहां मिलेगा? प्रत्युत कभी यह नाम सार्वजनिक होकर आर्य्योंकी सत्ताको ही मिटा देगा। अतः आर्य्य नाम ही ठीक जँचता है। इस 'आर्य्य' नामको प्रसिद्ध करके हम दूसरी जाति वालोंको भी इस नामकी स्मृति दिलाकर उन्हें अपना बनाते हुए आर्य्य-वृद्धि करनेके साथ आर्य्य-शक्तिको भी सम्पन्न बना सकेंगे। अब भी बहुतसी जातियां अपनेको आर्य्य-वंशज माननेमें अपना गौरव ही मानती हैं। अतः यह गुण 'भारतीय' इस नाममें न मिलेगा। वैसे आर्य्यावर्तकी सभी वस्तुवोंको भारतीय कहनेमें कोई आपत्ति नहीं है। परन्तु 'हिन्दु' नाममें तो धार्मिक और ऐतिहासिक संज्ञाकी मृत्यु ही हो चुकी है। इसी प्रकार—

हिन्दुस्तानेति नामापि लोकदृष्ट्या विचिन्त्यताम्।
प्राचीनः शास्त्रदृष्टत्वाद् आर्य्यावर्तः स्मृता बुधैः ॥७॥

इसी 'हिन्दु' नामके साथ-साथ ही आर्य्यावर्तका 'हिन्दुस्तान' यह नाम भी वैदेशिक है। अधिक क्या कहा जाय? यह नामकरण शैली भी उसी देशमें पायी जाती है, जैसे—तुर्कीस्तान, बलोचिस्तान, अफ़गानिस्तान वैसे ही हिन्दुस्तान। वे लोग तो कब्रोंकी बहुतायत वाले स्थानको भी—'कब्रिस्तान' कहते हैं। इसी तरह 'हिन्दुस्तान' यह नाम भी उन्हींका रक्खा हुआ है। जब 'हिन्दु' यह नाम अपना

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं है, तब 'हिन्दुस्तान' यह नाम अपना कैसे हो सकता है ? हमने तो इस नामसे इतना मोह लगा लिया है कि इसे 'हिन्दुस्थान' लिखकर अपना बना बैठे हैं। ऐसा करना भी हमारी दासवृत्ति-का ही सूचक है। यह नाम राजनैतिक दृष्टिसे भले ही प्रसिद्ध हो गया हो, परन्तु भारतीय ऋषि-कृत कदापि नहीं हो सकता। हमारा वास्तविक नाम 'आर्य्यावर्त' ही था, जिसका उल्लेख "आसमुद्रात्तु वै पूर्वात्—२।२२ मनुस्मृतिमें स्पष्टतया मिलता है। दूसरा—इति-हास संरक्षक ब्राह्मणों द्वारा उच्चारण किये हुए—संकल्प-प्रयोगमें भी ('जैसे ॐ तत्सद् ब्रह्माद्य श्रीश्वेतवाराहकल्पे जम्बूद्वीपे आर्य्यावर्ते कुमारिकानामक्षेत्रे भारतखण्डे इत्यादि) यह नाम सगौरव लिया जाता है। अतः हमारा वास्तविक नाम 'आर्य्यावर्त' ही सिद्ध होता है जिसे प्रचलित करना—सभी अवसरोंपर इन्हीं नामोंका प्रयोग करना—सभी आर्य्योंका मुख्य कर्तव्य होना चाहिये। हमारी सम्मतिमें तो जबतक 'हिन्दु' और 'हिन्दुस्तान' ये दो नाम सगर्व अपने माने जायँगे तबतक आर्य्यजाति स्वतन्त्र होती हुई भी परतन्त्र, अत एव निर्जीव समझी जायगी। भला, जिसका अपना और अपने देशका नाम भी अपना न हो तो उसके अस्तित्व और जीवनका क्या मूल्य हो सकता है ?

चारों वर्ण आर्य्य हैं

वर्णाश्चत्वार आर्य्याः स्युरन्योऽन्यं भ्रातरो मताः।
तेषां कर्तव्यमेवेदम्-आर्य्यावर्तस्य रक्षणम् ॥८॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ये चारों वर्ण आर्य्य माने गये थे। आर्योंसे भिन्न जाति 'अनार्य्य' या 'दस्यु' कही जाती थी। वेदमें दस्युओंको ही दण्ड देनेका उल्लेख पाया जाता है, शूद्रोंके लिये तो "रुचं नो धेहि ब्राह्मणेषु रुचं राजसु नस्कृधि। रुचं विश्येषु शूद्रेषु मयिधेहि रुचा रुचम्"....अर्थात् हमारा प्रेम ब्राह्मणोंमें भी हो, एवं क्षत्रियों, वैश्यों और शूद्रोंमें भी हो। इस प्रकार चातुर्वर्णिक-प्रेम समानरूपमें पाया जाता है। अतः शूद्रोंको दस्यु या दास कहना या उन्हें 'अनार्य्य' कहना वेदोंके विरुद्ध है। अतः ये चारों वर्ण आर्य्य होनेसे परस्पर भाई हैं। इन सबका कर्तव्य है कि वे आर्य्या-वर्तकी रक्षा करें। स्मरण रहे कि यह 'आर्य्य' संज्ञा योगरूढ है—श्रेष्ठ-परक भी है और जाति परक भी। अतः शूद्र भी 'आर्य्य' ही हैं। आर्य्यके श्रेष्ठ होनेमें दो कारण माने गये हैं—धर्मपूर्वक व्यवहार करना और परलोकपर विश्वास। ये दोनों धर्म चारों वर्णोंमें समान रूपसे घटित होते हैं। अतः चारों वर्ण ही आर्य्य हैं, यह सुतरां सिद्ध हो जाता है।

पिछले मध्यकालीन कुछ भारतीयविद्वानोंने द्विजोंको सवर्ण और शूद्रोंको असवर्ण रूपसे भेद करके केवल द्विजोंको ही 'आर्य्य' माना है और शूद्रोंको दास मानकर अपनेसे पृथक् कर दिया है। यह भारी भूल हुई है। भला जिस जातिमें सेव्य और सेवक एक जातिके न माने जायें तो वह जाति क्या कभी स्वावलम्बी हो सकती है? वह तो सदैव परमुखप्रेक्षी बनी रहेगी। ऐसी दशामें सेवकोंका विदेशीय-शासनकालमें विधर्मियोंमें मिल-

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाना स्वाभाविक ही था। वे लोग इस धर्ममें पददलित होकर क्यों रहते ? जबकि आर्य्योंका इनसे कोई सम्बन्ध ही न था। क्यों न वे इनसे पृथक् होकर विधर्मियोंमें समानताका अधिकार प्राप्त करते हुए और शासक बनकर इन्हीं पर अपना शासन जमाते हुए सम्मानित स्थान प्राप्त करते। बस, हमारी अनुचित घृणाका यह घातक परिणाम निकला कि हम घटते गये और शासक बढ़ते गये। अन्तमें वे इतने बढ़े कि आज वे शासक न रहते हुए भी, हमारे ही देशमें रहते हुए भी, केवल संख्याके बलमें हमारी ही आदि भूमिको खण्डशः करके हमारे देखते-देखते हमें निकालकर उसे अपना 'पाकिस्तान' बना बैठे। अब हमें अपनी भूलका सुधार करते हुए शूद्रोंको भी 'आर्य्य' अतएव भाई मानकर उन्हें सभी मानवीय अधिकार देकर इस ह्रासको रोकना चाहिये। समय पर इसका उत्तम परिणाम निकलेगा जो कि सारी न्यून-ताओंको पूरा करता हुआ देशको अखण्डित बनानेका कारण बनेगा।

देशो जातिश्च धर्मश्च त्रय आर्य्यत्वरक्षकाः।
पूर्वं पूर्वो रक्षणीयस्ततो जातिस्ततोऽपरः ॥९॥
मुख्यो लक्ष्योऽपि रक्ष्योऽपि धर्म एव मतो मम।
परं तत्साधनं देश—जात्यो रक्षणमेव तु ॥१०॥

देश जाति, और धर्मकी रक्षा ही वास्तवमें आर्य्यत्वकी रक्षा है। इसलिये इनकी रक्षामें क्रमशः देश, जाति और धर्मको प्रधा-

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नता देनी चाहिये। यद्यपि हमारे मतमें मुख्य लक्ष्य धर्म ही है। अतः पहले उसीकी रक्षा करनी चाहिये। किन्तु धर्म-रक्षाका साधन देश और जातिकी रक्षा ही मानी गई है, अतः पहले देशकी रक्षा, फिर जातिकी रक्षा करनी चाहिये। अनन्तर निश्चिन्तता पूर्वक धर्मकी रक्षा हो सकेगी। जैसे कहा भी है— 'साधनेन विना किञ्चित् साध्यं नैव प्रसिद्ध्यति। काष्ठैर्विना रथोत्पत्तिर्न कर्त्तुं शक्यते क्वचित्।' अर्थात् विना साधनके साध्यकी सिद्धि नहीं हो सकती। जब तक लकड़ीका प्रबन्ध न किया जायगा तबतक रथ तैयार न हो सकेगा। इसलिये पहले साधनरूप देश और जातिकी रक्षा करनी चाहिये। इसी भावको आगे देशरक्षाकी प्रधानता दिखलाकर स्पष्ट किया गया है—

देशे हि रक्षिते जाती रक्षिता जायते सदा।
स्थानहीना न शक्ताः स्युर्दन्ताः केशाश्च जातयः ॥११॥
तस्माद्देशो हि रक्ष्यः प्राक् सर्वस्वार्पणतोऽपि वा।
देशे त्राते जातिशक्तिर्निश्चिन्त्येनैधतेतराम् ॥१२॥

देशकी रक्षा हो जाने पर ही सदा जातिकी रक्षा हो सकती है क्योंकि स्थानके विना दाँत केश और जातियां ये सब कभी शक्ति-शाली नहीं हो सकते। इसलिये सर्वस्व अर्पण करके भी पहले देश की रक्षा करो, जब देश बच जायगा तो उसमें जातिको श्वास लेने, निश्चिन्ततापूर्वक बढ़ने और उन्नति करनेका अवसर भी मिल सकेगा। जब कि वास्तविक संख्यामें लगभग इक्कीस

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हजार संख्यामें आये हुए विदेशी और विधर्मी, हमसे तिरस्कृत हुए हमारे ही भाइयोंको मिलाते-मिलाते बढ़कर केवल ६ः सौ वर्षोंमें ही ९ करोड़ तक पहुँच गये और देशको खण्डित करके उसके दो भागों पर पाकिस्तान बनानेमें सफल हो सके। तथापि यदि हमने अपने शूद्र भाइयोंको न सँभाला तो इनके चले जाने पर ये ९ करोड़से बढ़ते-बढ़ते केवल सौ वर्षोंमें ही कितने बढ़ जायँगे, इसका अनुमान सहजमें ही लगाया जा सकता है। तब फिर वे शेष भूखण्डको भी खण्डशः करनेमें सफल हो जायंगे। अतः आर्य्योंको अपना रूप बदलना चाहिये, जिससे वे दूसरोंको अपना बनाते हुए एवं अपनोंको भी वास्तविक अपना बनाते हुए उन्हें सच्चे देशरक्षक बनायें।

या जातिर्देशहीना स्यात् प्रस्खलेत् सा पदे-पदे ।
तां कोऽपि नैवाऽऽद्रियते शरणं वा प्रयच्छति ॥१३॥
यथा गेहं विना गेही सम्प्राप्नोत्यवधीरणाम् ।
तथा जातिर्भृशं वा स्याज्जीविता निष्प्रभा भवेत् ॥१४॥
तस्माद्देशस्य रक्षायै सर्वैः सज्ञैः प्रभूयताम् ।
यद् रक्षामूलकं तावदार्य्यजातेस्तु रक्षणम् ॥१५॥

जो जाति अपने देशसे रहित हो जाती है वह पग-पग पर ठोकरें खाती है। न कोई दूसरी जाति उसका आदर करती है और न उसे अपनी शरणमें ही लेती है। जैसे कोई गृहस्थ होकर अपने घरके बिना सभी स्थानोंमें ठोकरें खाता है, कहीं भी

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसे विश्राम नहीं मिलता, ठीक यही दशा उस जातिकी होती है जिसका अपना देश नहीं होता। ऐसी दशामें उसके जीनेमें भी सन्देह होने लग जाता है, उसकी या तो मृत्यु हो जाती है या यदि वह भाग्यवशात् जीती भी रहती है तो निस्तेज होकर या मृतप्राय होकर। हमने वाहरी और अवास्तविक छूआछूतको ही प्रधानता देकर उसे ही मुख्य धर्म मानकर देश रक्षाके प्रश्नको ही भुला दिया है, जिसका अति भयङ्कर परिणाम हमारे सामने उपस्थित हुआ है। अतः हमारी 'धर्मप्राण' आर्यजाति जवतक पहले 'देशप्राण' नहीं वन जाती तवतक वह देशको शत्रुओंसे नहीं वचा सकती। यदि शासक वनकर 'धर्मप्राण' वनना अभीष्ट हो तो हमें पहले 'देशप्राण' वनना होगा। हमने देशके वाहर यहूदी जातिको भी दूसरे देशोंमें (इंगलैण्ड, फ्रांस और जर्मनीमें) धक्के दे-देकर निकालते जाते हुए देखा है और देशके अन्दर भी पाकिस्तानसे स्वयं धक्के खाकर वाहर निकाले जाने पर देख लिया है कि अपने देशका क्या मूल्य होता है ? इसलिये सवको देश रक्षाके लिये तैयार हो जाना चाहिये। यतः देशकी रक्षा ही जातिकी रक्षाका मूल कारण मानी गई है।

सिन्धुमार्गः सर्वपूर्वं रक्षणीयः प्रयत्नतः।
यस्मिन् संरक्षिते देशो रक्षितः सम्भविष्यति ॥१६॥

देश-पाश्चात्यभागा वा सामुद्रा औत्तरास्तथा।
सेनाभी रक्षणीयाः स्युर्देशरक्षा तदा दृढा ॥१७॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसलिये सबसे पूर्व, पूर्ण प्रयत्न करके सिन्धु देशके मार्गको रोकना चाहिये। यतः इसकी रक्षापर ही देशकी रक्षा निर्भर है। पहले भी सिन्धु देशके मार्गकी उपेक्षा करनेसे देश, मुसलिम विदेशी राज्यके अधीन हो गया था, तब सिन्धु देशके राजा दाहरकी किसी भारतीय राजाने सहायता न की थी, जिसका अन्तिम परिणाम सिन्धका पतन और ईसवीय सन् ७१२ में विदेशीय शासन आरम्भ हुआ। अतः सिन्धुमार्गको रोक रखना देश रक्षाका मूलकारण है। इसके साथ देशके शेष पश्चिमी द्वार, उत्तरीय मार्ग और पूर्व तथा दक्षिणके समुद्रीमार्ग सेना द्वारा सुरक्षित रखने चाहिये, तभी देशरक्षा दृढतापूर्वक की जा सकेगी। यह कर्तव्य तो मुख्यतया राजसभाका है, परन्तु राष्ट्रका इसमें सहयोग अवश्य होना चाहिये।

जातिरक्षाकी आवश्यकता

देशरक्षानन्तरं स्याज्जातिरक्षा सुखावहा।
जातिरक्षानन्तरं स्याद् धर्मरक्षा सुखावहा ॥१८॥

घृतस्य रक्षणार्थाय पात्ररक्षा गरीयसी।
तथा धर्मस्य रक्षायै जातिरक्षा महीयसी ॥१९॥

देशकी रक्षाके बाद जातिरक्षा, उसकी उन्नति और विकास आदि सब कुछ किया जा सकता है। दूसरे देशमें या दूसरे राज्यके नीचे बैठकर किसी जातिने कोई उन्नति नहीं की, और न वहाँ अपनी संस्कृतिका विकास ही किया जा सकता है।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसी तरह जातिकी रक्षाके बाद धर्मकी रक्षा उसकी उन्नति और विकास सब कुछ सुगमता पूर्वक किया जा सकता है। जैसे घृतकी रक्षाके उद्देश्यसे पहले पात्रकी रक्षा आवश्यक होती है, वैसे ही धर्मकी रक्षाके लिये जातिकी रक्षा आवश्यक है। जब पात्र ही टूट जाय तो घृत कहाँ बच सकेगा ? दूसरे शास्त्र भी धर्मरक्षासे पहले शरीर रक्षाको आवश्यक सिद्ध करते हैं—'शरीरं धर्मसर्वस्वं रक्षणीयं प्रयत्नतः। शरीरात् स्रवते धर्मः पर्वतात् सलिलं यथा'। पहले यत्न पूर्वक शरीरकी रक्षा करनी चाहिये, यतः शरीर ही धर्मका स्रोत है—इसीके द्वारा ही तो धर्म किया जा सकता है। जैसे पर्वतसे जल निकलकर देशको समृद्ध करता है, वैसे ही मानवसे किया हुआ धर्म उसके और राष्ट्रके जीवनको उज्ज्वल कर देता है। इसी तरह परा० ७।४१ में भी लिखा है कि "देश पर संकट आ जाने, परदेशमें जाने, रोग और जेल आदि संकटोंके आ जाने पर पहले शरीरकी रक्षा करो, पीछे धर्म करते रहना।" यह जाति भी धर्मका शरीर ही है, अतः पहले इसकी रक्षा करनी चाहिये, क्योंकि जाति जीवित रहेगी तो धर्म भी किया जा सकेगा।

जातिरक्षा कैसे करनी चाहिये ?

जातिर्यथा प्रवृद्धा स्यात् पूर्वं तत् क्रियतां बुधैः।
यथाऽसौ न क्षयं गच्छेत् तथा संयस्यतां ततः ॥२०॥
अर्बुदं सप्तनवतिः कोटयश्चोनत्रिंशदु।
लक्षाणि, चोनपञ्चाशत् सहस्राब्दानि सृष्टितः ॥२१॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एतावताऽनेहसेयमार्य्यजातिः समागता ।
या मूलं सर्वजातीनां सा कुतः क्षीणतां गता ? ॥२२॥

विद्वानोंका पहला यत्न तो यह होना चाहिये कि किन उपायोंसे जाति वढ़ सकती है ? दूसरा यह यत्न होना चाहिये कि यह इस संख्यासे घटने भी न पाये । जो जाति एक अरब त्तानवे करोड़ उनतीस लाख उनचास हजार अड़तालीस वर्षोंसे चली आ रही हो और जो भूमण्डलकी सभी जातियोंका मूल कारण हो वह क्यों घट रही है ? इसका समाधान भी तो आवश्यक है ।

जातिवृद्धिका प्रथम उपाय

जातिवृद्धयै भिन्नजातेर्जना ग्राह्याः प्रयत्नतः ।
ये चास्मज्जातितश्छिन्नाः भिन्नजातिमुपागताः ॥२३॥
वेदादिशास्त्रबोधेन प्रेम्णा साम्ना चरित्रतः ।
तेषां भावान् समाशोध्य मेलनीयाः स्वजातिषु ॥२४॥
यतः सर्वे मानवा वै मनोर्जाताः सहोदराः ।
तस्माद् आर्य्येषु ते सर्वे प्रवेष्टव्याः समन्ततः ॥२५॥

जाति वृद्धिके लिये आर्य्योंका प्रथम कर्तव्य यह है कि दूसरी जातिके उन लोगोंको लेना चाहिये जो हमारी घृणा और तिरस्कारसे व्याकुल होकर हमारी जातिसे कटकर दूसरी जातियोंमें मिल गये हैं । उन्हें वेद, पुराण और धर्मशास्त्र आदिका ज्ञानोपदेश देकर उनके साथ वास्तविक प्रेम, शान्तिमय प्रकार,

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आर अपने सुन्दर चरित्र बलके आधार पर उनके विचारोंको अपने विचारोंके अनुकूल बनाकर उन्हें अपनी जातिमें मिलाना चाहिये; यतः सभी जातियोंके लोग मनुष्य हैं—आदि-पुरुष मनुभगवान्की सन्तान हैं, जैसे कि हम भी हैं; अतः वे हमारे सहोदर भाईकी तरह हैं, इसलिये उनसे घृणा न करते हुए, हमें उनको आर्य्य जातिमें निःसङ्कोच मिला लेना चाहियें। मनुष्य मात्रके मनुपुत्र होनेकी सिद्धिमें श्री पाणिनिजी लिखते हैं—'मनोर्जातावञ्यतौ पुक् च' अर्थात् मनुकी सन्तान जब जाति बन जाय तो उससे 'अञ्' और 'यत्' प्रत्यय हों और पुक् का आगम हो—इससे दो रूप बन जाते हैं 'मानुषः' 'मनुष्यः'। कहींपर अपत्यार्थमें 'अण्' प्रत्यय भी आ जाता है, जिसका 'मानवः' यह रूप बनता है। चौथा—'पञ्चम्यामजातौ' से 'मनुजः' यह रूप भी बन जाता है। इन सब रूपोंका एक ही अर्थ है कि मनुष्य मात्र मनुकी सन्तान है। यह बात वेद-मन्त्रोंसे लेकर पुराणों तक सभी ग्रन्थोंमें पाई जाती है। जैसे—
एतावद् वै इदं सर्वं ब्रह्मक्षत्रं विट्शूद्राः मानव्यो हि एताः प्रजाः सर्वाः। शतपथः १४-४-२-२४; ४-२-२-१४; तैत्ति० ५-५-५। अर्थात् भूमण्डलकी सारी सृष्टि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चार वर्णोंमें विभक्त है, अत एव सारी प्रजा मनुकी ही सन्तान है।"

जातिवृद्धिका द्वितीय उपाय—

आर्य्यवंशात् समुत्पन्ना यवना हरिवर्षजाः।
सर्वे आर्य्याः स्थिराः कार्य्या आर्यवृद्धिर्यथा भवेत् ॥२६॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अरबी, ईरानी, तुर्क और अफगान आदि मुसलमान भाई, तथा योरोपके निवासी इङ्गलिश, फ्रैञ्च, जर्मन आदि भाई, सभी अपनेको आर्य्यवंशज मानते थे और अब भी प्रायः मानते हैं। केवल हमें अपने धर्मशास्त्रोंसे निर्णय देकर स्थिर कर लेना चाहिये और घोषणा कर देनी चाहिये कि 'ये सभी आर्य्य हैं' फिर शनैः-शनैः इनसे हमारा सामीप्य होता जायगा और समय पर ये सब हमारी शक्ति-वृद्धिका कारण बन सकेंगे।

जातिवृद्धिका तृतीय उपाय—

आर्यबुद्धानुगामित्वात् चीनजापानवासिनः।
ब्रह्म-जावा-सुमात्रास्था सर्वे आर्य्या मता बुधैः ॥२७॥

चीन, जापान, ब्रह्मा, जावा, सुमात्रा, हिन्देशिया, हिन्दचीन, कम्बोडिया आदि देशोंके निवासी, भारतीय तपस्वी आर्य्यवंश-कुलभूषण अहिंसाकी मूर्ति भगवान्के अवताररूप महात्मा बुद्धके प्रायः शिष्य हैं। अतः इन सबको भारतीय भावना और संस्कृतिकी प्रबलताके कारण 'आर्य्य' ही घोषित कर देना चाहिये।

जातिवृद्धिका चतुर्थ उपाय—

अग्निपूजा विधायित्वात् सूर्य्यादौ देवभावतः।
सौम्य-स्वभावतश्चापि पार्श्वस्था अपि तादृशः ॥ २८ ॥

पार्श्व देशके निवासी पारसी तो अग्नि, सूर्य्य, जल आदिमें आर्य्योंकी तरह देवबुद्धि रखनेवाले और स्वभावमें

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी आर्य्योंकी तरह सौम्य होनेसे हमारे अत्यन्त पार्श्वमें (समीपमें) हैं; अतः इनको भी 'आर्य्य' मानना चाहिये।

ज्ञातिवृद्धिका पञ्चम उपाय—

ये च मुद्गल जातीया नीग्रावो मलया अपि।
तेऽपि चार्य्यगुणैर्योगाद् आर्य्याः कार्य्याःसमन्ततः॥२९॥

जो मंगोलियन, नीग्रो, मलय आदि भिन्न वंशमें उत्पन्न हुए हैं, उनमें भी आर्य्योंके गुण भरकर उन्हें आर्य्य सभ्यताके विचार देकर आर्य्य वना लेना चाहिये।

सभी मनुष्योंको आर्य्य वनानेकी पुष्टिमें वेदका प्रमाण—

यतः 'पञ्चजना अग्निमयजन्त' श्रुतिः स्थिता।
तस्मात् पञ्चजना भूमौ आर्य्याःस्वीकरणे मताः॥३०॥
'कृण्वन्तो विश्वमार्य्यं' या श्रुतिरार्य्यत्वसाधिका।
सा कदा सार्थिका सिध्येत् कदा वा फलदा भवेत्॥३१॥
तस्माज्ज्ञातिप्रवृद्धयर्थं तथा यत्नो विधीयताम्।
यथा सर्वेषु राष्ट्रेषु सन्त्वार्य्या दृष्टिगोचराः।३२॥

वेदमें लिखा है—विश्वस्य केतुर्भुवनस्य (ऋक्)१०।४५।६। अर्थात् अग्निदेव सारे संसारका केतु (झंडा) वनकर सारे भुवनके गर्भमें स्थित पृथ्वीमें, अग्निरूपमें, द्युलोकमें, सूर्य्यरूपमें और अन्तरिक्षमें, इन्द्ररूपमें प्रकट होकर सर्वत्र व्यापक हो रहा है। यही विस्फोटक द्रव्योंसे शक्ति संचयकर पर्वतोंका भेदन

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करनेवाला है। ऐसे अग्निदेवको पाँच प्रकारके मनुष्य पूजते चले आये हैं।' इससे सिद्ध होता है कि वैदिक समयमें भूमण्डलके सभी लोग अग्निकी पूजा अर्थात् अग्निमें हवन करते थे—सभी अग्निहोत्री थे। तब निस्सन्देह उन सबको अग्नि-पूजक होनेके नाते 'आर्य' स्वीकार कर लेना चाहिये। ये पांच मनुष्य कौन हैं? इसका उत्तर शास्त्रोंमें भिन्न-भिन्न प्रकारसे मिलता है, जिनका अन्तिम उद्देश भूमण्डलके सभी मनुष्योंमें ही स्थिर हो जाता है—

(१) (ऐत० ब्रा० ३।३१) अर्थात् जिस यज्ञमें सभी देवोंका पूजन होता है वह यज्ञ पांच मनुष्योंसे किया जाता है जो कि (१) देव, (२) मनुष्य, (३) गन्धर्वाप्सरस्, (४) नागजातिके लोग और (५) पितृजातिके लोग, ये पांच प्रकारके—मनुष्य 'पञ्चजन' माने गये हैं। यह यज्ञ इन पांच मनुष्योंका साझा है; यतः सभी लोग इस भावको जानते हैं कि, इसमें देव, गन्धर्व आदि सभी मनुष्यजातिके ही भेद हैं, केवल गुणभेदसे नामभेद है।

(२) (ऋक्० ६।४।४३) 'इसमें पांच प्रकारके मनुष्योंवाली प्रजासे इन्द्रकी स्तुति की गई है।' इसमें भूमण्डलके पांच मनुष्य ही 'प्रजा' नामसे पुकारे गये हैं।

(३) (ऋक्० ८।१।१३) हे अन्न-भोजियो! यज्ञ-सम्पादको! पञ्च-जनो! मेरे यज्ञके भागीदार बनो।' इसमें पांचों मनुष्योंको यज्ञका भागीदार बनाया गया है। निरुक्तकार यास्काचार्य्यने भी इसकी व्याख्यामें—गन्धर्वाः पितरो देवा असुरा रक्षांसि इत्येके चत्वारो वर्णाः,

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पञ्चमो निषाद इत्यौपमन्यवः।.........ऐसा लिखा है। अर्थात् कई विद्वान् तो गन्धर्व, पितर, देव, असुर और राक्षस इन पञ्चविध-जनोंको 'पञ्चजन' कहते हैं। किन्तु औपमन्यव ऋषि—चार वर्ण और पांचवां निषाद इनको पञ्चजन मानता है।' औपमन्यवके मतमें निषाद भी सम्मिलित हो गया है। परन्तु वैदिक सिद्धान्तमें पांचवां वर्ण ही नहीं माना गया है।

(४) (ऋक्० १०।५३।५) जो भूमिमें जन्मे हुए और यज्ञ-सम्पादक पांच प्रकारके लोग हैं, वे सब ही मेरे यज्ञमें आयें।" इसमें भी भूमण्डल निवासी ही पञ्चजन माने गये हैं।

(५) (महा० आ० ८५ अ०) राजा ययातिके पांच पुत्रोंमेंसे यदुसे यादव, तुर्वसुसे यवन, द्रुह्युसे भोज, अनुसे म्लेच्छ और पूरुसे पौरव अर्थात् पाण्डव और धार्तराष्ट्र उत्पन्न हैं, हे पाण्डव! तू भी जिसमें उत्पन्न हुआ है।' इसमें भी भूमण्डलकी प्रायः सभी जातियां आगई हैं जो कि पांच भाइयोंकी सन्तानें हैं। निघण्टुमें ये सभी नाम मनुष्यजातिके माने गये हैं। तब भी ये सब पांच मानव ही सिद्ध होते हैं।

(६) छठा मत भी सुनिये—इसके लेखक हैं वर्तमानकालके पञ्जावके भिवानी निवासी श्री स्वर्गीय शिवनाथ आहिताग्नि एग्ज़ेक्युटिव इञ्जीनियर। इन्होंने ऋग्वेद भाष्यकी टिप्पणीमें १-७-९ में लिखा है—(१) 'इण्डो यूरोपियन् (आर्य्यजाति)—जो आर्य्यवर्त, फारस, योरप, U. S. A. और आईसलैण्डमें पाये जाते हैं। (२) मंगोलियन—जो चीन, जापान, रूस, ग्रीनलैण्ड और

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्तरी अमेरिकामें पाये जाते हैं। (३) नीग्रो—जो मध्य दक्षिण अफ्रीकामें पाये जाते हैं। (४) अमेरिकन जो उत्तरी और दक्षणी अमेरिकामें पाये जाते हैं। (५) मलय—जो मलाया, सुमात्रा बोर्निंग्, सीलेवीज, फिलिपाइन और फ़ोर्मोजामें पाये जाते हैं।" इसमें तो मनुष्य मात्रकी पांचों जातियां आ ही गई हैं। इन सबका ऐकमत्येन भाव यही है कि वेदकालमें भूमण्डलके सभी मनुष्य यज्ञ करनेवाले या यज्ञके अधिकारी थे, अतः सभी 'आर्य्य' स्वीकार करनेके योग्य हैं। दूसरा—'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्, अपघ्नन्तो अराव्णः'……ऋ०…अर्थात् सभी विघ्नबाधाओंको दूर करते हुए सब विश्ववर्ती जनोंको आर्य बनाते हुए विजय प्राप्त करो' यह आधिभौतिक अर्थ कब सार्थक होगा और कब होगा फलदायक ?, हम यदि केवल जन्मके द्विजों (ब्राह्मणों, क्षत्रियों और वैश्यों) को ही आर्य मानकर बैठ गये तो ये घटते २ समाप्त हो जायँगे। तब वृद्धि और उन्नति तो दूर रही, प्रत्युत एक दिन सर्वनाश हो जायगा। इसलिये हमें जाति वृद्धिके लिये इतना प्रबल प्रयत्न करना चाहिये कि आर्य्यावर्तसे भिन्न सभी राष्ट्रोंमें भी आर्य्य ही आर्य्य दृष्टिगोचर हों ॥ ३१ ॥

जाति-ह्रास न होनेके उपाय—

जातेश्चतुर्थो वर्णो यः स नोच्छेद्यो घृणावशात् ।
विनाऽऽधारं न कस्यापि सदनस्य क्वचित् स्थितिः॥३३॥

आधारे रक्षिते पश्चादाधेयो रक्षितो भवेत् ।
मूले संरक्षिते वृक्षो रक्षितो मन्यते बुधैः ॥३४॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आर्यजातिका जो चतुर्थवर्ण शूद्रसमुदाय है वह भी आर्य्य समूह ही है। इसको दस्युओं या दासोंमें गिनना हमारी भूल है। इनसे घृणाकरके या इनका तिरस्कार करके इन्हें अपनेसे पृथक् नहीं करना चाहिये, ये तो हमारी जातिके आधार हैं–अत्यावश्यक अंग हैं। यतः विना आधारके तो घर भी खड़ा नहीं किया जा सकता, प्रत्युत आधारकी दृढ़रक्षापर ही तो आधेयकी रक्षा निर्भर है, मूलकी रक्षापर ही तो वृक्षका जीवन निर्भर है। अतः किसी भी शूद्रको चाहे वह निकृष्ट, निकृष्टतर अथवा निकृष्टतम भी कर्म क्यों न करता हो, जब कि उस कर्मको भी पूरा करनेकी समाजको आवश्यकता है, तो उसे समाजसे कभी पृथक् नहीं करना चाहिये। शुद्ध होकर समाजमें आनेपर उसे मानवीय अधिकार पूरे देने चाहिये। श्रीपाणिनिजीने 'शूद्राणामनिरवसितानाम्' (अ० २ पा०, ४ सू० १०) में पात्रान्तर्गत और पात्र वहिर्भूतका भेदकरके उन शूद्रोंका जो समाहारैकत्व किया है (जो पात्रवहिर्भूत नहीं हैं), इससे शूद्रोंके भेद सिद्ध नहीं किये जा सकते। यह तो उस समयकी परिस्थितिके अनुसार उदाहरण मात्र है, अर्थात् तब भी जातिमें भेद-भावना प्रदर्शक पतन हो चुका था अथवा अवैदिक भेद भावना प्रचलित हो चुकी थी जिससे उनको वैसा सूत्र वनाना पड़ा; यह पतन तो इससे भी पहलेका है। महाभारतमें भी एकलव्य, शूद्र होनेसे धनुर्वेदाधिकारी न माना गया था और कर्ण मत्स्यवेधनकी योग्यता रखनेपर भी केवल शूद्र होनेसे द्रौपदीके द्वारा पहले ही निषिद्ध मान लिया गया था। पतन

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तो इससे भी पूर्वका है। ऐत० में भी कवष की विद्वत्ता और योग्यता होनेपर भी उसे यहाँ तक तिरस्कृत कर दिया कि 'यह अब्राह्मण दासीका पुत्र कितव क्यों आया है? यह प्यासा ही मरे, पर सरस्वती नदीका जल नहीं पी सकता, (विद्या नहीं पढ़ सकता)।' तब पाणिनिजीको सूत्र बनानेका क्या दोष दिया जाय।

परन्तु वेद ही एक ऐसा आदर्श ग्रन्थ है जिसमें—(यजु० १६, २७ में) "बढ़ई, सईस, कुम्हार, लोहार, कसाई, चाण्डाल, कुत्तों और मृगोंके पालनेवाले जंगली भी सब-के-सब उस रुद्रभगवान्का रूप माने गये हैं। हमें इन सबको रुद्ररूप मानते हुए उभयतः नमस्कार करना चाहिये—आगे और पीछे भी इनको प्रणाम करना, इनका सत्कार करना चाहिये।" ऐसा लेख मिलता हो वहाँ पात्रान्तर्गत और पात्र बहिर्भूतका भेद कहाँ किया जा सकता है? सच तो यह है कि जबसे हमने वेदवर्णित विराट् रूप प्रभुको भुला दिया है—हमने मानवताके मूल्यको हृदयसे निकाल दिया है तबसे हम इन्हें तिरस्कार और घृणाका पात्र बनाते चले आये हैं। अब हमें वैदिक आदर्शपर चलकर 'मानवो मानवत्वेन मानवानां सहोदरः। अतो मानवमात्रार्थं मानवेन प्रबध्यताम्'। (शा० ध० नि० राज०) अर्थात् मनुष्य, मनुष्य होनेके नाते सभी मनुष्योंका भाई है इसलिये मनुष्य राजाको मनुष्य मात्रके लिये एक प्रबन्ध करना चाहिये—मनुष्य-मात्रको समान रूपमें नागरिक अधिकार देनेका प्रबन्ध करना चाहियें। इस सिद्धान्तके अनुसार सब मानवोंको मनुका पुत्र

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मानकर उनसे भोजनादिमें समानताका भाव रखना चाहिये, वेदकी महिमामें सारे स्मृतिकार एकमत हैं, श्रीमनुजीने (१) २।६। (२) १२।९४। (३) १२।९५ में वेदोंकी महत्तापर इतना बल दिया है कि–(१) 'सम्पूर्ण वेद ही धर्मका मूल है (२) यतः देव, पितर और मनुष्य सबको सनातन, ज्ञानदायक वेदही नेत्र मिला हुआ है जिसको न तो कोई तोड़ सकता है और न उसकी शक्तिको कोई माप सकता है।' (३) जो स्मृतियां वेदके विरुद्ध हों और जो कुत्सित विचार हों वे सबके सब तामसी होने और परलोकमें भी घातक होनेसे निष्फल, व्यर्थ मानने चाहिये। इतनी महिमावाले वेदके सामने भेद प्रदर्शक या घृणा प्रदर्शक अथवा अधिकार विघातक स्मृतिकारोंका क्या मूल्य रह जाता है ? अतः शूद्रको भी सुधारना चाहिये। उनको भी हमारी तरह देव-दुर्लभ मानव शरीर मिला हुआ है। इसलिए उसे पृथक् करना ठीक नहीं।

चाण्डालो वाऽन्त्यजो वापि निषादो न पृथक् क्वचित्।
वर्णाश्चत्वार एवासन् मुखबाहूरुपादतः ॥ ३५ ॥
सर्वे शूद्रा विराड्रुद्रे समाविष्टाः समन्ततः।
तस्मान्न ते वहिष्कार्य्या नमस्कार्य्या हि ते मताः ॥ ३६॥

स्मृतिग्रन्थोंमें विद्वानोंने चाण्डाल, अन्त्यज, अन्त्यावसायी, निषाद, वृषल आदि अनेक भेद जो शूद्र वर्णके बना रखे हैं वे सभी अमौलिक हैं। यतः केवल चार ही वर्ण हैं जो प्रभुके चार अङ्ग—मुख, बाहु, उरु और पादरूप माने गये हैं, इनमें किसीको

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पञ्चम वर्ण मानना अशास्त्रीय है। जब पांचवां अंग ही नहीं है तो पांचवा वर्ण कहां सिद्ध हो सकता है ? श्री मनुजीने भी (१०।४) में ऐसा ही निर्णय दिया है। अर्थात् 'पांचवां कोई वर्ण नहीं' तब ये भेद कहां तक न्याय-युक्त कहे जा सकते हैं। इसी तरह (१)शत० ५।५।४।९। (२) १४।४।२,२४।२ अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ये चार ही वर्ण हैं, येही सब कुछ हैं। (२) येही चार वर्ण हैं, सब इन्हींमें हैं। ये सब हो श्रीमनुकी सन्तान हैं। (३) ३।४।१, तैत्ति० ज्ञानके लिये ब्राह्मण, निर्बल-रक्षाके लिये क्षत्रिय, प्रजा-प्रबन्धके लिये वैश्य और तपोमय जीवनके लिये अर्थात् यन्त्र निर्माणादि उग्र कार्य्योंके लिये शूद्रको बनाया गया; फिर पाँचवां वर्ण क्या करता है ? ये सब ही विराट्रूप रुद्रमें समाविष्ट हैं; अतः इनको बहिष्कृत नहीं करना चाहिये, प्रत्युत प्रभुरूप मानकर इनको नमस्कार ही करना चाहिये, इसलिये—

आर्य्यजातेः शक्तिवृद्धिर्जायते च यथा-यथा ।
तथा-तथा च विद्वद्भिः धर्मं त्रातुं प्रयत्यताम् ॥ ३७ ॥

जैसे आर्य्यजातिकी शक्ति बढ़ सके विद्वानोंको वैसे ही यत्न करने चाहिये। यतः जातिकी वृद्धि होनेपर ही धर्मकी वृद्धि और रक्षा दृढतापूर्वक हो सकेगी ॥३६॥

आर्य्यजातेः संस्कृतिश्च भूगोले प्रवरा मता ।
तस्मात् तस्या रक्षणाय तत् त्रिकं परिरक्ष्यताम् ॥३८॥

यतः आर्य्यजातिकी संस्कृति-रीति-मर्य्यादा-साहित्य आर

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संस्कार ये सब सम्पूर्ण भूगोलमें श्रेष्ठ माने गये हैं; इनके सभी नियम, वैयक्तिक सामाजिक और राष्ट्रिय जीवनमें शान्तिदायक सिद्ध होते हैं। अतः इन संस्कृतियोंकी रक्षाके लिये यह अत्यन्त आवश्यक है कि हम देश, जाति और धर्मकी रक्षा करें। इनकी रक्षा कैसे हो ? इसका उत्तर दूसरे प्रकरणमें स्पष्टतया मिलेगा।

इति देश-जाति-धर्म-रक्षाप्रकरणम्।

काशी निवासी श्री डा० भगवानदासजीने भी इस पक्षकी पुष्टि की है

संख्यात्वेतादृशैरेव परधर्मेषु वर्धिताः।
तिरस्क्रियन्ते वचसा क्रियया येऽल्पदर्शिभिः ॥ १ ॥
शतं प्रतिशतं संख्या हिन्दूनां याऽभवत्पुरा।
केवलं पंचषष्टिः सा शिष्टेदानीं तु भारते ॥ २ ॥
चत्वारिंशच्च पञ्चैव वङ्गदेशे शिशेष सा।
हिन्दुभ्यस्ते भृशं क्रुद्धाः पीडयन्त्यत एव तान् ॥ ३ ॥ (मा०ध०सा०)

दूसरे धर्मवालोंकी संख्या तो इन्हीं शूद्रोंने ही बढ़ाई है जिनको हमारे अदूरदर्शी विद्वानोंने वाणी और क्रियासे भी तिरस्कृत किया है जिस देशमें पहले शत-प्रतिशत संख्या आर्य्योंकी थी, वहां अब केवल प्रतिशत पैंसठ ही शेष रह गई है। बंगालमें केवल पैंतालीस ही शेष रह गये हैं, एवं पश्चिमी पञ्जाबमें भी आर्य्योंका बहुत ह्रास हो गया है। इसी तिरस्कारसे ही हमसे त्रस्त हुए वे शूद्र और दूसरे भी अवसर पाकर हम आर्य्योंको पीड़ित कर रहे हैं, उनका हम आर्य्योंको पीड़ित करना प्रति क्रिया है, जो इस तिरस्कार क्रियाके रुक जाने पर स्वयं रुक जायगी।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अथ वीरताधर्मप्रकरणम्

सर्वधर्मप्रधानो यो वीरताधर्म उच्यते ।
धर्माणामुपधर्माणां सर्वेषां रक्षको हि सः ॥१॥
यस्मिन् प्राप्ते तु राष्ट्रस्य जातेर्धर्मस्य सर्वदा ।
रक्षणं वर्धनं स्नेहः सौहार्दं भयशून्यता ॥२॥

सब धर्मोंमें वीरताको ही प्रधान धर्म माना गया है। सभी यज्ञ, पूजापाठ आदि धर्मोंकी तथा चोटी, जनेऊ, तिलक आदि उपधर्मोंकी वास्तविक रक्षा करनेवाली यह वीरता ही मानी गई है। जब सबने इस वीरताको अपना लिया तब राष्ट्रकी रक्षा, जाति और धर्मकी रक्षा भी भली भाँति सम्पन्न हो सकेगी। जातिकी वृद्धि भी तभी हो सकेगी और अन्यान्य जातियोंके साथ इसका स्नेह सम्बन्ध एवं मैत्री सम्बन्ध भी स्थिर हो सकेगा। समूचे राष्ट्रमें निर्भयता भी तभी उत्पन्न हो सकेगी।

एकोऽपि वीरतायुक्तः सम्मुखे चेत् समागतः ।
कातरा यदि पञ्चाशत् शतं वा स्युः पराजिताः ॥३॥
किम्पुनर्यत्र जातिर्हि वीरताजीवनं वहेत् ।
तदा तु दुर्बलमृगो नूनं सिंहायितो भवेत् ॥४॥
यदि जातिर्दुर्बला स्यात् कातरा भीरुरेव वा ।
तदा शूरोऽपि यः कश्चित् सोऽपि निर्बलतां व्रजेत् ॥५॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यदि वीरतासे युक्त एक व्यक्ति भी सामने डटकर खड़ा हो जाय तो शत्रु पचास या सौ भी क्यों न हों; सबके सब कायर बनकर उससे हार मान लेते हैं। पर जब समूची जाति ही वीरतामय जीवन धारण कर ले तो कहना ही क्या है ? तब तो उस जातिमें हिरन जैसा दुबला-पतला व्यक्ति भी जातिके बलपर सिंहके समान गर्जना करने लग जाता है अर्थात् वह भी वीरतापूर्वक शत्रुओंसे लड़ता है। यदि जाति ही दुर्बल, कायर, डरपोक हो तो उसमें वीर बहादुर भी हो तो वह भी असहाय होनेसे निर्बल होकर पीछे हट जाता है। इसलिये सारी जातिको वीर बनना चाहिये।

वीरताप्राप्तये वीर्य्यं रक्षणीयं भविष्यति।
व्यायामश्चैव कर्तव्यः श्रामिकी जीविकाऽपि वा ॥६॥
यः समग्रं दिनं भुक्त्वा चैकस्थाने स्थितो भवेत्।
शेतां क्रीडतु वा जल्पेद् वीरधर्मा कथं भवेत् ? ॥७॥

वीरताको प्राप्त करनेके लिये सबसे पहले वीर्य्यकी रक्षा करनी चाहिये, नित्य व्यायाम करना अथवा कोई श्रमकार्य करना चाहिये। तभी वीरता प्राप्त हो सकेगी। पर जो व्यक्ति समस्त दिन खा-खाकर एक स्थानमें बैठा रहे या सोता रहे या शतरञ्ज, चौपड़ आदि खेलता रहे वह वीर कैसे बन सकता है ? अतः वीरतामय जीवन प्राप्त करनेके लिये सबको परिमित आठ घंटे व्यापारमें देकर शेष समय व्यायाम, शक्तिवर्धक खेल और शस्त्रचालन-शिक्षाके लिये देना आवश्यक है।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सदैवोद्योगशीलो यः पुष्टभोजी जितेन्द्रियः।
प्रभौ परमविश्वासी धर्मरक्षणतत्परः ॥८॥
निर्भयः पूर्णधर्मात्मा महोत्साहश्च वीर्य्यवान्
मृत्युं गृहं मन्यमानः वीरकर्मा स उच्यते ॥९॥

वीरकर्मा पुरुष वह हो सकता है जो नित्य किसी न किसी कामसें लगा रहे, पुष्टिकारक भोजन करनेवाला, इन्द्रियोंको वशमें रखनेवाला, भगवान्पर पूरा विश्वास रखनेवाला, धर्म-रक्षामें सदा तत्पर, शत्रुसे सदा निर्भय रहनेवाला, जीवनको धार्मिक बनानेवाला, सभी कामोंमें महान् संकटोंमें भी धैर्य्य और उत्साह रखनेवाला वीर्य्यवान् हो, मृत्युको तो अपना घर समझने वाला हो, ऐसा व्यक्ति स्वयं भी धन्य है, और जिस कुलमें वह उत्पन्न हुआ हो वह कुल भी धन्य है।

ब्राह्मणो वीरतायुक्तः क्षत्रियो वीरतां वहेत्।
वैश्योऽपि वीर्य्यसम्पन्नः शूद्रो वै वीरतां व्रजेत् ॥१०॥
सर्वा नार्य्यश्च वीराः स्युः बाला वीराश्च बालिकाः।
वृद्धा अपि हि वीराः स्यु 'वीरभोग्या वसुन्धरा' ॥११॥
वीरता राष्ट्ररक्षायै न स्वस्त्यै राष्ट्रवासिनाम्।
राजाऽऽदेशानुसारेण सज्जाः स्यु राष्ट्ररक्षणे ॥१२।

सभी ब्राह्मणों, क्षत्रियों, वैश्यों और शूद्रोंको वीरता प्राप्त करनी चाहिये। राष्ट्रकी सभी स्त्रियोंको भी वीर बनना चाहिये, सभी बालकों और बालिकाओंको भी वीर बननेका अभ्यासी

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होना चाहिये। यहां तककी देशके बूढ़ोंको भी वीरता धारण करनी चाहिये। यतः इस भूमिको वीर ही भोग सकते हैं। कायरोंके हाथसे तो यह छीन ली जाती है परन्तु, इस वीरताका उद्देश राष्ट्रकी रक्षा करना ही हो, किसी राष्ट्रवासीको मारना या उसे तंग करना न हो। जब भी राष्ट्ररक्षाके लिये राजा या राज-सभाका आदेश मिले तब सभी राष्ट्रवासियोंको तैयार हो जाना चाहिये। तब सभीका एक ही नारा हो कि

"आर्य्यभूमिके हम हैं स्वामी, आर्य्यावर्त हमारा है।
प्राण विसर्जन करेंगे उसपर, जितना देश हमारा है।"

शत्रवः शिक्षणीयाः स्युः साम्ना प्रेम्णा चरित्रतः।
येन नैष्ठुर्य्यहीनाः स्युर्जीवनं शोधयन्तु ते ॥१३॥

शत्रवो ये न शिष्याः स्युः सन्तु चेदाततायिनः।
क्षिप्रं व्यापादनीयास्ते तद्वधो न हि दोषदः ॥१४॥

जो राष्ट्रके शत्रु हों—राष्ट्रको हानि पहुंचाना ही जिनका ध्येय हो, उन्हें पहले तो शान्ति, प्रेम और अपने चरित्र बलसे शिक्षा देनी चाहिये, जिससे वे लोग कठोरताका व्यवहार छोड़ दें और अपने जीवनको सुन्दर बनायें, राष्ट्रभक्त बनें। परन्तु जो सिखाने पर भी न समझें और शत्रु ही बने रहें; प्रत्युत आततायी होकर हमें मारनेके लिये आयें तो उन आक्रामकोंको शीघ्र ही मार देना चाहिये। उनके मारनेमें कोई दोष नहीं, कोई पाप नहीं। ऐसे अवसर पर राजकीय अपराध भी लागू नहीं हो सकता ॥ १४ ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वीरवेशः समैर्धार्य्यो वीरकार्य्यं विधीयताम् ।
वीरगाथास्तथा वाच्याः कातरो वीर्यवान् भवेत् ॥ १५ ॥
कक्ष्या स्याज्जानुपर्य्यन्ता सञ्जनी वक्षसि स्थिता ।
शिरस्त्राणं शीर्षके स्यात् पादयोः पादरक्षिका ॥ १६ ॥
स्त्रियाः कक्ष्या पादगा स्यात् चोलिकोपरि सञ्जनी ।
परिधान ग्रन्थिबद्धं वीरवेशः स्त्रिया मतः ॥ १७ ॥
शाटिका तु स्त्रियाः पुंसः शृङ्गारे पूजने शुभा ।
वारकार्य्ये तु शाटीयं विघ्नकर्त्री भवेदिति ॥ १८ ॥
आ-वत्सरात् पञ्चमात्तु पञ्चपञ्चाशदब्दगः ।
आवश्यको वीरवेशो वार्द्धके शाटिका शुभा ॥ १९ ॥

हम सवको सदैव वीरवेश धारण करना चाहिये और वीरताको जागृत करनेवाले काम करने चाहिये । हमें ऐसे वीरोंकी कथाएँ कहनी चाहिये जिनको सुननेसे एक वार कायर भी वीर वन जाय । सवके लिये एक 'वीरवेश' होना चाहिये जिसमें पुरुषोंके लिये घुटनोंतक एक कक्ष्या (निकर या कक्ष्या) हो, छाती पर एक कमीज़ हो और ऋतुके अनुसार भले ही अन्य वस्त्र हो, सिरपर टोपी हो और पैरोंमें जूता । स्त्रियोंके लिये पाँवतक लम्बा पायजामा हो या बिना घेरेकी सलवार हो । छातीमें चोली कसी हो और ऊपर कमीज़ हो, ओढ़नी इस ढंगसे ओढ़ी हो कि उसे गांठ बांधकर दृढ कर लिया जाय, वह वार २ खिसकती न रहे और

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दोनों हाथ भी खुले हों। इनके पाँव का जूता भी एड़ीदार हो। वीरवेशमें धोती तो न होनी चाहिये, वह तो स्त्रियोंके शृङ्गार धारणके समयमें और पुरुषोंके पूजा-पाठके समयमें शुभ-अनुकूल मानी गयी है। वीर कार्य्यमें तो वह उलटे विघ्नकर्त्री (रुकावट डालने वाली) प्रमाणित होती हैं। यह वीरवेश पाँचवें वर्षसे लेकर पचपन वर्ष तक तो सबके लिये आवश्यक होना चाहिये। धोती तो इस आयुके बाद ही अनुकूल समझनी चाहिये।

वीरकार्य्ये शिक्षणे च व्यायामे कार्य्यपाटवे।
क्रीड़ायां धावने चापि वीरवेशो जयप्रदः ॥२०॥

यह वीरवेश वीरकार्यमें, सैन्यशिक्षामें, कसरत करनेमें, वृक्ष पर चढ़ने, तम्बू लगाने आदि स्फूर्ति योग्य कार्य्योंमें, तथा कबड्डी-गेंद-आदि खेलोंमें, और दौड़ लगानेमें सफलता देनेवाला प्रमाणित होता है।

वीरशिक्षा समेषां स्यात् पुंसां स्त्रीणां च शाश्वती।
सर्वदेशः सैन्यकार्य्ये चाग्रणी सम्भवेद् यथा ॥२१॥
देशनिर्भीकतासिद्ध्यै शस्त्र-चालन-शिक्षणम्।
सैन्यशिक्षाप्रबन्धश्च कर्तव्यो भूभुजा सदा ॥ २२ ॥

यह वीरशिक्षा सभी पुरुषों और स्त्रियोंके लिये आवश्यक होनी चाहिये, जिससे समूचा देश सैन्य-कार्य्यमें सभी राष्ट्रोंका अग्रणी हो सके। इसमें राजाका या राज्यसभाका भी यह कर्तव्य होना चाहिये कि वह राष्ट्रको निर्भय बनानेके लिये सबको

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शस्त्र चलाने की शिक्षा दे और सैन्य-शिक्षाका प्रवन्ध करे।

विप्रा उत्साहदा नित्यं वीरशिक्षाप्रदायकाः।
स्त्रियः पुत्रेषु वीराणां भावान् संक्रामयन्तु च ॥२३॥

ब्राह्मणोंको सबमें वीरतोत्पादक उत्साह भरना चाहिये, उनको वीर बननेकी शिक्षा देवें। माताएं भी अपने पुत्रोंमें वीरोंके भाव भरने वाली हों। जैसे कि कुन्तीने पुत्रसे कहा था कि 'यदर्थं क्षत्रिया सूते कालोऽयं समुपागतः' अर्थात् 'हे पुत्र! क्षत्रियाणी जिस वीरतामय जीवनके लिये पुत्रोंको जनती है, वह समय आगया।'

वीरश्चेद् रोगयुक्तः स्यात् धिकार्य्यो दण्ड्य एव वा।
वीरता रुग्णता चापि सहैकत्र न तिष्ठतः ॥२४॥
वीरता ब्रह्मचर्यं च सहोभे ते शुभे मते।
एकं कारणरूपं स्याद् अपरं कार्य्यमेव च ॥२५॥

यदि कोई वीर होकर भी रोगी बन जाय तो उसे धिक्कार देना चाहिये कि तू वीर होकर भी विषयासक्त होनेसे रोगी बन गया है, अतः तेरे असंयमी जीवनको धिक्कारहै। अथवा उसे दण्ड देना चाहिये कि तू क्यों रोगी बन गया? यतः वीरता और रुग्णता ये दोनों कभी इकट्ठे नहीं रह सकतीं—जहां वीरता होगी वहाँ कोई रोग न आसकेगा, किन्तु जहाँ रोग होगा वहाँ वीरता कैसे आ सकेगी? अतः वीरको सदैव स्वस्थ रहना चाहिये। हाँ, वीरता और ब्रह्मचर्य्य ये दोनों इकट्ठे रह सकते हैं। यतः

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इनमेंसे एक कारण बनता है तो दूसरा उसका कार्य्य बन जाता है। वीरताको सुरक्षित रखनेके लिये ब्रह्मचर्य्यरक्षा अनिवार्य्य हो जाती है और ब्रह्मचर्य्यकी रक्षासे वीरता स्वयमेव उत्पन्न हो जाती है।

वीरः स्वकार्य्ये मत्तः स्यात् सर्वदा निर्भयो भवेत्।
भयं तु कातरे युक्तं न तु वीरे कदाचन ॥२६॥

अभोः पश्चात् पुरस्तात्तु चोत्तरादधरादपि।
अमित्रादपि मित्राच्च वैदिकीयमिति श्रुतिः ॥२७॥

वीर अपने काममें इतना मस्त हो जाय कि वह सदा निर्भय हो जाय, भय तो सदा कायरोंको ही शोभता है। वीरोंमें उसका स्थान नहीं है। यतः वेदमें लिखा है कि—'अभयं पश्चादभयं पुरस्तादुत्तरादधरादभयं नो अस्तु', 'अभयं मित्रादभयममित्रादभयं ज्ञातादभयं परोक्षात्'—अर्थात् हमें आगे-पीछे, ऊपर-नीचे, सर्वत्र अभय हों, जहां अमित्रसे निर्भयता हो वहां मित्रसे भी निर्भयता हो—ऐसा न हो कि हम मित्रका भयमानकर उसका पक्षपात कर बैठें। ऐसा निष्पक्ष न्याय तो निर्भीक वीर ही कर सकता है।

रामः कृष्णः शिवो विष्णुर्बलदेवश्च कालिका।
सर्वे देवा हि धर्मस्य रक्षार्थं शस्त्रधारिणः ॥२८॥

सा जातिः शस्त्रभृद् भूयात् बाप्पावत् शिववीरवत्।
प्रतापवच्चार्जुनवत् छत्रसालवदार्य्यवत् ॥२९॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नृसिंहः शस्त्रहीनोऽपि नखैः शत्रुं व्यदारयत् ।
तद्भक्ता साऽऽर्यजातिर्हि व्यस्मार्षीद् वीरतां कथम् ? ॥३०॥

जब कि श्रीरामचन्द्र, श्रीकृष्णचन्द्र, श्रीशिव, श्रीविष्णु और श्रीकाली आदि देवों और देवियोंने धर्मकी रक्षाके लिये शस्त्र धारण किया तो हमें भी बाप्पा रावल, वीर शिवाजी, महाराणा प्रतापसिंह, वीरगुरु अर्जुन देव, वीर छत्रसाल और आर्य्यवीर गुरुगोविन्द सिंह आदिके समान शस्त्रधारी होना चाहिये।

श्रीनृसिंह भगवान्‌ने हिरण्यकशिपुको मारते समय शस्त्र न होनेपर भी अपने नखोंसे ही उसे चीर दिया। तो आज उस नृसिंहकी भक्त आर्यजाति अपनी स्वाभाविक वीरताको क्यों भूल गई ? यह समझमें नहीं आता। वीर देवोंके भक्तोंको तो वीर ही बनना चाहिये।

आत्मा नित्यः सदा ज्ञेयः सर्वेषामेव देहिनाम् ।
अद्य मृतश्चेत् श्वो जातः तत्र चिन्ता तु कीदृशी ॥३१॥
यत् सुख जीवने लभ्यं मृत्यौ लभ्यं ततोऽधिकम् ।
तस्मात् सुखस्य सम्मोहं त्यक्त्वा युद्धे प्रवृत्त्यताम् ॥३२॥
शिरोदाने शिरोरक्षा तद्गुप्तौ तत्क्षयो ध्रुवः ।
तस्मादेकं शिरो दत्वा सहस्रं तत् प्ररक्ष्यताम् ॥३३॥
'हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम्'
उभयत्र समो लाभस्तस्माच्चिन्ता प्रहीयताम् ॥३४॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जितने भी देहधारी प्राणी हैं उन सबकी आत्मा तो नित्य है। मनुष्यके मरजाने पर उसकी आत्मा तो नहीं मरती। यदि हम आज मर गये तो क्या हुआ? शरीर ही तो नष्ट हुआ, आत्मा तो फिर दूसरा शरीर धारणकर—नया बनकर आजायगा; इसलिये आर्य्यसिद्धान्त माननेवालोंको तो मरनेकी कोई चिन्ता ही नहीं होती। हमें जीते हुए जितना सुख मिल रहा है, देश, जाति और धर्मके लिये मरनेपर तो इससे भी अधिक सुख मिलेगा। इसलिये इस स्वल्प सुखका मोह छोड़कर युद्धमें प्रवृत्त होना चाहिये। यदि हम युद्धमें एक सिर देंगे तो उसके फलमें कई सिरोंको बचा सकेंगे। किन्तु यदि उस एककी रक्षा के मोहमें आकर अन्दर छिप गये तो वह एक भी न बचेगा, इसके साथ और भी कई सिर मारे जायंगे। इसलिये उत्तम मार्ग तो यह है कि एक सिरको देकर दूसरोंके हजारों सिरोंको बचा लें। यदि तू धर्मकी रक्षा करता हुआ मारा गया तो स्वर्गको प्राप्त करेगा, यदि विजय प्राप्त करके जीता लौट आया तो भूमिका राज्य प्राप्त करेगा। इसलिये हमें तो भाई! श्रीकृष्णजीके कथनानुसार दोनों अवस्थाओंमें बराबर लाभ है। अतः चिन्ता छोड़कर युद्धमें सम्मिलित होजाना ही उत्तम है।

परत्राणं वीरता स्यान्न परस्मात् स्वरक्षणम्।
परस्माद् रक्षामन्विच्छन् कातरः कथ्यते बुधैः ॥३६॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कातरो नहि धर्मात्मा कातरो नहि जीवति ।
कातरो नहि सभ्यः स्यात् कातर्य्यान्मरणं वरम् ॥३६॥

वीरता तो वह मानी जाती है जो किसी दूसरेको बचाकर उसे संकटसे निकालकर ले आये। वह कैसी वीरता है कि शत्रुओं के चंगुलमें फँसकर उनकी दयासे बचा हुआ लौटकर अपनी वीरताका वर्णन करे, यह तो कायरता है। कायरका भी क्या कोई जीवन है ? वह तो धर्मात्मा कहलानेका अधिकारी भी नहीं। वह तो सभामें बैठने योग्य भी नहीं। ऐसे कायरपनेसे तो उसका मरजाना ही ठीक है, अतः हमें कभी भी कायर न बनना चाहिये।

शीतकाले चलन् वायुर्नृणां वह्निविवृद्धिकृत् ।
स एव दुर्वलं हन्ति देवो दुर्वलघातकः ॥३७॥
वनानि दहतो वह्नेः सखा भवति मारुतः ।
स एव दीपनाशाय कृशे कस्यास्ति सौहृदम् ? ॥३८॥
रोगा दुर्वलहन्तारः शत्रवस्तद्विघातकाः ।
दुर्वलस्य निजात्माऽपि स्वस्मिन् ग्लानिवहो भवेत् ॥३९॥
तस्माद् दुर्वलताव्याधिरपनेयः प्रयत्नतः ।
तदपनयोपायस्तु वीरताप्राप्तिरेव च ॥४०॥

शीतकालमें चलता हुआ वायु बलवानोंकी तो भूख बढ़ाने-वाला होता है, पर वही वायु दुर्वलकी मृत्युका कारण बन जाता है। सच तो यह है कि देवता भी दुर्वलको ही मारते हैं। दूसरा

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह भी देखा गया है कि वायु भी उस अग्निका मित्र बनता है जो बलवान् बनकर जंगलोंको जलाता है, यह उसे और भी उत्तेजित करता है। पर, जब वही अग्नि दीपकके रूपमें दुबला होजाता है तो वही वायु उसे बुझानेवाला बन जाता है। सच तो यह है कि दुर्बलका कोई मित्र भी नहीं बनता, प्रत्युत सभी उसे मारनेवाले ही हो जाते हैं। रोग भी दुर्बलोंको ही मारते हैं, बलवान्के पास कोई रोग भी नहीं आने पाता। यदि आ भी जाता है तो वह शीघ्र ही मारा जाता है। शत्रु भी शत्रुको दुर्बल जानकर उसे मारनेवाले हो जाते हैं। दुर्बलके लिये इससे अधिक अपमान और क्या हो सकता है कि उस दुर्बलका अपना आत्मा भी अपने आपसे ग्लानि करने लग जाता है, वह स्वयम अन्दर ही अन्दर अपने से घिनाता है कि हाय! मैं इतना दुर्बल क्यों हुआ? इसलिये हमें यत्नपूर्वक पहले दुर्बलतारूपी रोगको दूर करना चाहिये जो दूसरे रोगोंका अड्डा बन जाता है। उसके निवारणका एकमात्र उपाय यह है कि हम वीर बनें, वीरवेश धारण करें, व्यायाम करें, सात्त्विक भोजन करें, वीरतावर्द्धक खेल खेलें, वीरोंकी कथाएँ कहें और वीरोंकी कथाएँ सुनें।

अदीनं जीवनं यच्च यच्च शौर्येण जीवनम्।
सत्यं तज्जीवनं प्रोक्तमन्यथा काकजीवनम् ॥४१॥

मृगोऽपि जीवति चिरं मृगराजोऽपि जीवति।
मृगस्य जीवनं तुच्छं मृगराजस्य कीर्तिदम् ॥४२॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऊँचा जीवन तो वही समझा जाता है जो पिता माता-आदि गुरुजनोंको छोड़कर अन्य किसीके आगे कभी न झुके और वीरताका जीवन प्राप्त करे। जैसे—महाराणा प्रताप। यदि कोई रोटीके टुकड़ेके लिये दूसरोंके आगे झुक जाय तो उसका जीवन तो कौवोंके जीवनके समान निकृष्ट है, परमुखापेक्षी है। जीता तो हिरन भी है, और शेर भी। पर इनमें हिरनके जीवनका क्या मूल्य, जो सदा शिकार ही बना रहे, जीना तो शेरका उत्तम है, जो एक नहीं, अनेक मृगोंको अपना भोजन समझता है। तभी तो वह 'मृगराज' कहलाता है।

घातको घातितो वाऽपि किं द्वयोरन्तरं मतम्।
एको वीरेषु गण्येत द्वितीयः कातरेषु च॥ ४३॥
लक्ष्यो वा लक्षको वाऽपि कः श्रेष्ठ इति चिन्तिते।
लक्ष्यो मृत्युमवाप्नोति लक्षकश्चिरजीवकः॥ ४४॥

मारनेवाले और मारखानेवाले में क्या अन्तर है? इसका उत्तर यह है कि मारनेवाला वीरोंमें गिना जाता है और मारखानेवाला कायरोंमें। हम भी मारनेवाले बनें, मारखानेवाले न बनें। उक्त विषयको एक दूसरे प्रकारसे भी पूछा जासकता है कि निशाना उत्तम है या निशानेबाज? इसका भी सीधा उत्तर यही है कि निशाना बननेवाला सदा मार ही खाता रहता है, किन्तु निशानेबाज सदा जीता रहता है। अतः हमें लक्षक (निशानेबाज) ही बनना चाहिये। पर्याप्त समय तक हम लक्ष्य बनकर मार खाते रहे हैं।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पादाहतं यदुत्थाय मूर्द्धानमधिरोहति ।
स्वस्थादेवापमानेऽपि देहिनस्तद्वरं रजः ॥४५॥

नीचे पड़ी हुई धूल भी जब किसीके पाँवकी चोट खाती है तो झट, वहांसे उड़कर उसी मारनेवालेके सिरपर जा बैठती है। दूसरोंसे अपमानित होनेपर भी बदला न लेनेवालेसे तो यह धूल ही उत्तम है।

शृङ्गारोऽपि प्रियस्तेषां ये वीरत्वगुणान्विताः ।
निर्बलानां च शृङ्गार आयुर्मर्माणि कृन्तति ॥४६॥

पत्नीका शृङ्गार और उसका अपना भी शृङ्गार उसी पुरुषके लिये शोभाजनक हो सकता है जो वीरता दिखाकर घरमें पहुंचे। किन्तु जो निर्बल है, कायर है, उसके लिये तो यह शृङ्गार भी चुभनेवाली वस्तु है। कायरको तो स्त्री भी धिक्कार देती है। तभी एक स्त्रीने कहा है कि—

भल्ला हुआ जो मारिया बहिणि हमारो कन्तु ।
लज्जेजं वयसीमधे, जो पीठ देउ घर एन्तु ।

अर्थात् हे बहिन! मेरा पति जूझता हुआ यदि मारा भी गया है तो भी मेरी भलाई हुई है, क्योंकि वह वीर बनकर वीरगतिको प्राप्त हुआ है। यदि वह पीठ देकर घर लौट आता तो मैं सहेलियों में लज्जित होती। ये हैं वीरपत्नियोंके हृदयोद्गार।

भारते योषितश्चापि वीराः शस्त्रभृतो बभुः ।
यासामुदाहृतिर्दुर्गालक्ष्मीप्रमुखयो मताः ॥४७॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वीरजा वीरजायाहं वीरमाता तथैव च ।
वीरस्वसा स्वयं वीरा इत्यासीद् यद्दहङ्कृतिः ॥४८॥
यस्यास्तु स्वीकृतिरियं सपत्नी चेद् भवेदपि ।
पत्युर्मे वीरतापत्नी तया सह वसाम्यहम् ॥४९॥
धर्माय युध्यमानानां स्त्रीणां च मरणं वरम् ।
न तु शत्रुगृहे वासात् स्वधर्मस्य विनाशनम् ॥५०॥
स्वास्थ्यं सौख्यं यौवनं वा विद्यते मोहकारकम् ।
जन्मान्तरे पुनर्लभ्यमिति सत्यं वदाम्यहम् ॥५१॥

भारतमें तो स्त्रियाँ वीर बनकर शस्त्रधारण करनेवाली हो गई हैं। जिनका उदाहरण बनकर गढ़मण्डलकी रानी दुर्गावती और झांसीकी रानी लक्ष्मीबाई आदि आज भी संसारमें चमक रही हैं। भारतीय स्त्रीको तो सदैव यही गर्व रहता है कि मैं वीर-पुत्री, वीर-माता, वीर-पत्नी और वीर-भगिनी ही बनूं। इतना ही नहीं कि मेरे सम्बन्धी ही वीर हों, प्रत्युत मैं स्वयं भी वीराङ्गना बनूं। भारतीय स्त्री प्रथम तो किसी सौतको चाहती ही नहीं; यदि चाहती थी तो इतना ही कि—'यदि 'वीरता' ही मेरे पतिदेव की स्त्री बनकर मेरी सौत बन जाय तो मैं उसके साथ प्रसन्नता पूर्वक रह सकूंगी'। अर्थात् वीर पुरुषकी यही दो स्त्रियां होती थीं— एक महिला दूसरी वीरता। धर्मकी रक्षाके लिये युद्ध करती हुई स्त्रियोंका मर जाना ही उचित, पर ऐसा कभी न हो कि वे शत्रुके हाथमें आकर जीती रहें। इससे जहाँ हमारे

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धर्मका नाश होगा, वहाँ हम शत्रुकी वृद्धि करके अपने परिवारकी मृत्युका कारण बनेंगे। यह एक महापाप होगा। अब जो भी सुख, यौवनमय जीवन, और धन हमारे पास है, जो हमें मरने नहीं देता, यह तो दूसरे जन्ममें भी मिल जायगा, जैसे कि अब मिला है। अब इसका मोह त्यागकर हमारा धर्मके नाम पर मर जाना ही उत्तम है। यह शाण्डिल्य शास्त्री सत्य-सत्य कहता है।

पुरा यद्देशरक्षायै क्षत्रिया जीवनं ददुः।
इदानीं तस्य रक्षायै सर्वैः पुम्भिः प्रयत्यताम् ॥५२॥
संन्यासिन उदासीना निर्मला गिरयश्च ये।
नग्ना वाऽथ विरक्ता वा सर्वे स्युः शस्त्रधारिणः ॥५३॥
वीरवन्दा च साधूनां वेशं स्वीकृतवानपि।
धर्मकष्टनिवाराय वीरवेशं दधार सः ॥ ५४ ॥
समर्थो रामदासोऽपि शिवायोपादिशद् यथा।
तथा साधुभिरार्यास्ते ह्युपदेश्याः समन्ततः ॥ ५५

पहले समयमें जिस आर्य्यावर्त्तकी रक्षाके लिये प्रायः क्षत्रिय लोग ही अपना जीवन दे देते थे और शेष केवल देखते ही खड़े रह जाते थे। तभी तो उनकी स्वतंत्रता भी समाप्त हो गई। परन्तु अब तो उसकी रक्षाके लिये सबको तैयार होना चाहिये। संन्यासी, उदासी, निर्मले, गिरि और पुरी, नागे और वैरागी सबको वीर बनकर

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राष्ट्ररक्षाके लिये शस्त्र उठाने का अभ्यास करना चाहिये। वीर वन्दा वैरागी, जो साधुओंका वेष धारण कर चुका था—घर द्वार छोड़ चुका था, फिर भी श्रीगुरुगोविन्दसिंहजीके सत्परामर्शसे उसने वीर वेश धारण किया।

इधर समर्थ रामदास स्वामीने जैसे शिवाजीको उपदश देकर उन्हें धर्मरक्षाके क्षेत्रमें खड़ा किया था, उसी तरह वर्तमान साधुओंको भी अनेकों शिववीर तैयार करके भारत राष्ट्रको शत्रुओंसे वचाना चाहिये। अव समग्र भूमण्डलमें भारतीय-सम्मानकी रक्षाके लिये सवको वीर वनाना चाहिये। वैराग्यो-पदेशका समय अव नहीं रहा। स्वातन्त्र्यरक्षाकेलिये सवमें वीरताकी भावना ही उत्पन्न करनी चाहिये।

शत्रोराक्रमणे हस्तौ, पादौ ऊरू मुखं यथा।
युध्यन्ते देहरक्षायै, तथा राष्ट्रं सुरक्ष्यताम् ॥ ५६ ॥

जव कोई किसी व्यक्ति पर आक्रमण करता है तव उस वीरके हाथ भी लड़ते हैं और पाँव भी अवसर पर चोट करते हैं, घुटने भी मौका पाकर उसे धर दवाते हैं, और सिर भी अपनी टक्करसे या दाँतोंसे शत्रुको घायल करता है अर्थात् सभी अंग अपनी-अपनी शक्तिके अनुसार शत्रुसे लड़कर देहकी रक्षा करते हैं। ठीक इसी तरह सभी राष्ट्रवासियोंको मिलकर शत्रुसे राष्ट्रकी रक्षा करनी चाहिये; इसकी स्वतन्त्रताको स्थिर रखना चाहिये।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कातर्यें जीवनात्तावद्, वीरत्वे मरणं वरम् ।
मृतस्य रक्तबिन्दुभ्यः, शतं वीराः पुनः पुनः ॥ ५७ ॥

कायरपनसे जीते रहनेसे तो वीरताकी भावनामें मर जाना ही उत्तम है। वीरतापूर्वक लड़कर मरे हुए वीरके एक-एक रक्तबिन्दुसे सैकड़ों वीर उत्पन्न होते जायँगे—मरे हुए वीरके रक्तविन्दुसे सभी 'रक्तवीज' वनते चले जायँगे।

मृत्योर्बिभेषि किं बाल ! न स भीतं विमुञ्चति ।
अद्य वा दशवर्षान्ते, मृत्युस्तु प्राणिनां ध्रुवः ॥ ५८ ॥
धनस्य साधनस्यापि, यौवनस्य विशेषतः ।
त्यक्त्वा मोहं धर्मरक्षा—कर्मणि क्षिप्यतां समम् ॥ ५९ ॥
अन्ते धर्मजयोऽवश्यं, सम्भविष्यत्यसंशयम् ।
'धर्म एव हतो हन्ति, धर्मो रक्षति रक्षितः' ॥ ६० ॥

हे अवोध वच्चे ! तू मृत्युसे क्यों डर रहा है ? यदि तू डर जायगा तो क्या वह तुझे छोड़ देगी ? नहीं, कभी नहीं। चाहे तो वह आज भी आ सकती है, नहीं तो दस-बारह वरसके अनन्तर; वह तो अवश्य ही आयगी, तब उससे डरनेका क्या कार्य ? इसलिये हम सवको धन और यौवन सम्बन्धी मोहका त्यागकर धर्म और राष्ट्रकी स्वातन्त्र्य-रक्षाके लिये सब कुछ बलिदान कर देना चाहिये। अन्तमें धर्मकी विजय अवश्य होती है—इसमें कोई सन्देह नहीं। यदि हम धर्मको, अपने सामने मरता हुआ ही देखते रह गये तो वह मरता हुआ हमें भी साथ ही मारता

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
जायगा। किन्तु यदि हमने प्राण देकर भी उस धर्मकी और राष्ट्रकी रक्षा कर ली तो वह धर्म या राष्ट्र हमारी भी रक्षा करेगा और आगे आनेवाली हमारी सन्तानकी भी रक्षा करेगा। अतः हमें राष्ट्र, जाति और धर्मकी रक्षाके लिये सदैव कटिबद्ध होना चाहिये।

इति वीरताधर्म प्रकरणम् । २ ।

अथ धर्मस्वरूपमीमांसा-प्रकरणम्

धर्म आत्मध्वनिर्येन, जन आस्तिकतां व्रजेत् ।
निवर्तेत कुमार्गाच्च, संयमी निर्मलो भवेत् ॥ १ ॥
विश्वधर्मोऽप्ययं प्रोक्तः, सार्वभौमोऽप्ययं मतः ।
प्रजाया धारकोऽप्येष, प्रत्येक व्यक्तिसम्भृतः ॥ २ ॥
धर्माधिकारी मनुजो, न कश्चिन् साम्प्रदायिकः ।
साम्प्रदायिकधर्मा ये, ह्युपधर्मेषु ते स्थिताः ॥ ३ ॥

धर्म, यह एक अन्तर्ध्वनि है—अन्तरात्माकी वह स्वाभाविक सत्य प्रवृत्ति है जिसके अनुसार अपना जीवन बनानेसे मनुष्य 'धर्मात्मा' बनजाता है। इसीका नाम है 'धर्मको धारण करना'। इसको धारण करनेसे मनुष्य आस्तिक बनता है—ईश्वर और परलोक पर विश्वास करने लगता है, कुमार्गसे हट जाता, और संयमी एवं निर्मल हो जाता है। यह

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
'आध्यात्मिक सत्यप्रवृत्तिरूप' धर्म ही 'विश्वधर्म' भी कहा जाता है 'सार्वभौम' भी और 'मानवधर्म' भी! यही धर्म, प्रत्येक व्यक्तिसे धारण किया हुआ, व्यक्ति और समाज दोनोंकी रक्षा करता है। महाभारतकार व्यासने इसी धर्मके लिये "धारणाद् धर्मं इत्याहुर्धर्मो धारयते प्रजाः" यह लक्षण लिखा है, अर्थात् 'धारण किया हुआ धर्म, व्यक्ति और समाज दोनोंके व्यवहारको सुचारु रूपसे चलाता है।'

इस धर्मका अधिकारी भी मनुष्यमात्र ही है, कोई साम्प्रदायिक व्यक्ति इसका विशेष अधिकारी नियत नहीं है। जो धर्म साम्प्रदायिक होते हैं—पृथक्-पृथक् सम्प्रदायोंमें भिन्न-भिन्न रूपमें माने जाते हैं, वे तो 'उपधर्म'—छोटे धर्म हैं। ऐसे उपधर्म आर्य्यजातिके भी हैं, जिनका वर्णन आगे किया जायगा। परन्तु 'धर्म' तो सभी मानवोंकी समान वस्तु है, जिस पर चलना एवं जिसे प्राप्त करना मानवमात्रका जन्मसिद्ध अधिकार है। मनुने भी[1] धर्मका अधिकार मानवमात्रको ही दिया है। वे इसी आध्यात्मिक धर्मको 'मुख्यधर्म' मानते हैं—अतएव उन्होंने इसका तीन स्थानोंमें निर्देश किया है। 'आत्मनस्तुष्टिरेव च'[2] 'स्वस्य च प्रियमात्मनः'[3] 'यत्र वाऽस्य रमेन्मनः'[4] इन तीनोंका एक ही तात्पर्य है कि

देखिये—१—मनु, २ अ०, श्लो० ९; २—मनु, अ० २, श्लो० ६; ३—मनु० अ० २, श्लो० १२; ४—मनु, अ० २, श्लो० २२३.

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिस कामके करनेमें आत्मा सन्तुष्ट हो, जो आत्माको प्रिय लगे या जिस कार्यमें आत्मा वस्तुतः प्रसन्न हो। दर्शनशास्त्र भी धर्म और अधर्म को आत्माका ही विशेष गुण मानते हैं। किन्तु जो पापकर्मको आत्मानुकूल समझ ले वह तो धर्म नहीं हो सकता। क्योंकि वह उस पापकर्मका अपने ऊपर प्रयुक्त होना ठीक नहीं समझता। आत्मध्वनि तो वही समझी जाती है जो सभी आत्माओंको प्रिय लगे, पापकर्म तो स्वार्थपूर्ण है; अतः वह 'धर्म' नहीं कहा जा सकता।

इसी आत्मध्वनिको ठीक-ठीक समझनेके लिये ही ऊपर चढ़नेका क्रम मिलता है—यदि अन्तरात्माकी उज्ज्वल प्रवृत्तिकी परीक्षा करनी हो कि यह प्रवृत्ति यथार्थ है या अयथार्थ, तब पहले तो उसे सज्जनोंके आचारसे मिलाना चाहिये। यदि उसमें भी सन्देह हो तो उसे स्मृतियोंसे मिलाइये और उसमें भी यदि कोई विरोध या वैमत्य मिले तो उसे वेदोंसे मिलाइये। बस, वेदको ठीक समझनेके लिये दूसरे किसी शास्त्रकी साक्षीकी आवश्यकता नहीं, वह सभी प्रमाणोंका मूलाधार है अतएव स्वतः प्रमाण है।

परन्तु यह वेद भी मानसिक सत्यप्रवृत्तिका प्रकाशक ही है, कोई स्वतन्त्र निर्धारक नहीं; क्योंकि वेद स्वयम् भी ऐसा ही निर्णय देता है—'यस्मिन् ऋचः साम' (यजुः, ३४।५।) जिस मनमें ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद रथकी नाभिमें अरोंके समान समाये हुए हैं, वह मेरा मन शुभसंकल्पों वाला हो।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अतः वेद, स्मृति और सदाचार ये तीनों इसी आत्मतुष्टिके ही पोषक हैं। इसका कारण यह है कि कोई भी किसी जाति या वर्णका हो, यदि उसका जीवन अन्तरात्माके अनुकूल है तो वह वेदको न जानते हुए, स्मृतियोंका ज्ञान न होते हुए, साधुओंका आचार न समझते हुए भी धर्मात्मा ही है। अतः अन्तरात्माकी स्वाभाविक प्रवृत्ति ही धर्मका मूलाधार है। इस सन्दर्भका स्पष्टार्थ यह है कि एक मनुष्य जिसने न तो वेद पढ़ा है और न स्मृति और न वह किसी साम्प्रदायिकताकी शिक्षादीक्षामें आया है, केवल अन्तरात्माकी सत्य प्रवृत्तिसे काम करता है तो क्या वह 'धर्मात्मा' नहीं माना जा सकता ? क्या एक ग्रामीण या पर्वतीय या जांगलिक पुरुष सच्चे कर्तव्योंको करता हुआ 'धर्मात्मा' नहीं हो सकता ? क्या धर्म कोई बाहरसे आने वाली वस्तु है जो उसमें ऊपर से डाली जाती है ? क्या संसारके दूसरे मतावलम्बी सत्य व्यवहार करते हुए धर्मात्मा नहीं कहे जा सकते ? प्रभुने तो मानवकी आत्माको इतना निर्मल बनाया है कि वह स्वयम् सत्यमार्गको प्राप्त करता है। यह दूसरी बात है कि कोई स्वार्थवशीभूत होकर अन्तरात्माकी निर्मल ध्वनिको ठुकराता हुआ अधर्मको धर्म कह दे और अकर्तव्यको कर्तव्य मान ले। उस दशामें स्मृतियों और वेदों के अनुसार उसके विचारोंको मिलानेकी आवश्यकता होती है। अतः स्वार्थियोंको सुधारने और उन्हें सरलता पूर्वक सच्चा मार्ग प्राप्त करानेके लिये वेदका मानना, वेदानुकूल कही हुई

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्मृतियोंका ज्ञान और सदाचारियोंका जीवन आवश्यक मानना चाहिये। इसीलिये (मनुस्मृति) में चारोंको ही धर्मके नामसे कहा गया है।

धर्म बलपूर्वक न कराना चाहिये

न बलाद् धार्यते धर्मो, न बलात् कार्यते तपः।
श्रद्धया धार्यते धर्मः, सत्यतः कार्यते तपः ॥४॥

धर्म किसीपर बलपूर्वक लादा नहीं जा सकता। यथा—'हे विधवे ! तुझे अवश्य वैधव्यमें रहना है क्योंकि तेरा यही धर्म है' और न बलपूर्वक किसीसे तपस्या ही कराई जा सकती है कि 'हे पुरुष ! तुझे अवश्य संन्यासी बनना होगा, अवश्य ही तपस्या करनी होगी।' धर्म तो वह मानसिक विकास है जिसका ज्ञान करा देनेसे फिर श्रद्धापूर्वक उससे वह धर्म भी कराया जा सकता है और सत्यका ज्ञान कराकर उससे तपस्या भी कराई जा सकती है। शास्त्रोंमें भी यही साक्षी मिलती है कि 'श्रद्धया हूयते हविः' अर्थात् होम, जप-तप, सब कुछ श्रद्धा उत्पन्न करके ही कराया जा सकता है। बलपूर्वक कराये हुए कामोंको मनुने भी धर्म नहीं माना है[1]। अतः धर्मके नामपर बलात्कार करना या बलपूर्वक किसीपर धर्मको लादना धर्म नहीं; प्रत्युत पाप है।

---

१ देखिये—मनु०, अ० ८, श्लो० १६८

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुख्य धर्मोंका वर्णन

मुख्यो धर्मः स विज्ञेयो, यो जगन्मात्र क्षकः ।
समो जनेषु सर्वेषु, सर्वदैकरसो भवेत् ॥५॥
प्रेम सत्यं सदाचारः, प्रभुभक्तिः पवित्रता ।
गुरुत्रयस्य भक्तिश्च, मुख्यधर्मा इमे स्मृताः ॥६॥

मुख्यधर्म या नैसर्गिक धर्म या मानवधर्म तो वही माना गया है जो सम्पूर्ण जगत्‌की रक्षा करनेवाला हो, सबको मर्य्यादापर चलानेवाला और विश्वमें सच्ची शक्ति उत्पन्न करनेवाला हो। अतएव वह सबमें—भिन्न २ सम्प्रदाय वाले सभी जनोंमें—एक जैसा माना जाने वाला हो और साथ ही वह सदा एक रस रहने वाला हो—कभी बदलने वाला न हो—वही मुख्य धर्म है। वह प्रेम, सत्य, सदाचार, प्रभुभक्ति, पवित्रता और माता-पिता एवं गुरुकी भक्ति—इन छः भेदोंमें विभक्त हुआ है। यहां—

(१) प्रेमसे (१) प्राणीमात्रसे अनुराग रखना, (२) किसीसे घृणा न करना, पापसे घृणा करते हुए भी पापीसे घृणा न करना, (३) दीनों पर दया करना तथा उनकी अन्नवस्त्रादिसे यथासम्भव सहायता करना(४) परधर्मसहिष्णु होना, (५) धर्मशाला, जलशाला, अन्नसत्र, विद्यालय और औषधालय आदि खोलकर जनताको सुख पहुँचाना, (६) विद्वानों और सदाचारीजनोंकी धनादिसे सहायता करना (७) मित्रों और बन्धुओंका सत्कार करना, (८) स्त्री, पुत्र और भृत्योंसे भी मधुर बोलना, कभी उनका तिरस्कार न करना इत्यादि गुण ग्रहण करने योग्य हैं।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(२) *सत्य से*—(१) वादी और प्रतिवादीका सच्चा निर्णय करना, (२) जीवनको सत्य मार्गपर चलाना, (३) पवित्र जीविकासे धन प्राप्त करना, (४) ऋणको सभी अवस्थाओंमें उतारना, युक्तियोंसे उसका अपलाप (छिपानेका यत्न) न करना; (५) अपनी भूलको मानना, उसे छिपाने वाली युक्तियोंको न ढूँढते रहना—इत्यादि भाव धारण करने चाहिये।

(३) *सदाचारसे*—(१) चोरी न करना, (२) व्यभिचारसे बचना (३) जितेन्द्रिय होना (४) स्वभावमें सरल होना, भूलकर भी किसीसे द्रोह, विशेषतः मित्रद्रोह कभी न करना, (५) जनताका उपकार करना, (६) लज्जाशील होना (७) ईर्ष्यालु न होना, (८) सम्पत्तिमें कभी गर्व न करना इत्यादि गुण जानने चाहिये।

(४) *प्रभुभक्तिसे*—(१) भगवान् पर सदा विश्वास रखना, (२) उसके दिये और उसके किये पर सदा प्रसन्न रहना, (३) संकट आजानेपर अपनेको दोषी ठहराना, कभी भूल करके भी प्रभुको उलाहना न देना, (४) निर्धनतामें भी अधर्माचरण न करना, (५) सदैव उससे भय रखना, पर दूसरे किसीसे भय न करना, किसीसे दब्बू न बनना, सदैव वीर बनकर रहना, (६) उसे सदैव स्मरण करना, (७) सुख, दुःख, हानि, लाभ-सभी अवस्थाओंमें प्रसन्न रहना आदि गुण प्राप्त करने योग्य हैं।

(५) *पवित्रतासे* (१) मन, वाणी और शरीरको पवित्र रखना (२) अभक्ष्य भक्षणसे बचना, (३) झूठी साक्षी और पापमयी

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जीविकासे अपनेको वचाना, (४) लेन-देन स्पष्ट रखना । (५) मनमें पापमय संकल्पोंको पनपने भी न देना (६) पापसे प्राप्त हुए पदार्थको उपभोग या उपयोगमें न लाना, (७) मिताहारसे स्वास्थ्यको, स्नानसे शरीरको, और सावुनसे वस्त्रको भी उज्ज्वल रखना आदि गुण प्राप्त करने चाहिये ।

(६) माता-पिता और विद्या-गुरुकी भक्तिसे—

(१) इन तीनोंको देव-तुल्य मानना, (२) इन्हें अपनी जीविका, उन्नति और सुखोंका मूलकारण मानकर इनकी सर्वविध सेवा करना, (३) इन्हें सदैव, विशेषतः; वृद्धावस्थामें सुख पहुँचाना, (४) इनके छोटेसे छोटे उपकारके वदले अपनी वड़ीसे वड़ी सेवाको भी तुच्छ समझना, (५) अपनी वड़ीसे वड़ी सुख-समृद्धिमें भी इनकी सेवामें कभी प्रमाद न करना, (६) सदैव इनके प्रति कृतज्ञताका भाव ही प्रकट करना, कृतघ्न न होना, (७) इनसे तिरस्कृत होनेपर भी, इनके विपरीत आचरण न करना, (८) इनके सामने और पीछे भी सदा नम्र होकर रहना आदि गुण प्राप्त करने चाहिये । इसी प्रकार दूसरे माननीयों और वड़ोंका भी ऐसा ही संमान करना चाहिये ।

मनुने भी ऐसा ही माना है—[1] अर्थात् इन तीनोंकी सेवा करना एक वड़ी तपस्या है । इनकी आज्ञाके विना दूसरा कोई धर्म भी न करना चाहिये । पुत्रके सामने तो तीन लोक, तीनः

१—मनु० २ अ० २२८—३० श्लो०

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आश्रम, तीन वेद और तीन अग्नियां भी ये ही हैं।

यही मुख्य धर्म हैं, यही मानव धर्म है। इनका आचरण करने वाले जन सदैव सुखी, निर्भय, निश्चिन्त, वीर, सेवक, पुण्यात्मा और सभीके विश्वासपात्र बनते हैं। अतः उन्नति चाहनेवालोंको, इन धर्मोंका नित्य अनुशीलन और उक्त अवगुणोंका परित्याग करना चाहिये।

मनुजीके मतमें मुख्यधर्म

मुख्यो धर्मो मनु-मते, धृत्यादिर्दशसंख्यकः।
स त्वैहिकफलाप्त्यै स्यात्, पारत्र्ये चापि मोक्षदः ॥७॥

मनुके मतमें सभी वर्णों और आश्रमों के लिये 'धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः। धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्।' (६।९२) ये दश 'मुख्यधर्म' कहे गये हैं—

धृतिः—विपत्तिमें और सम्पत्तिमें भी धैर्य्य धारण करना। अज्ञानी मनुष्य सम्पत्ति पाकर गर्वीले हो जाते हैं। तब वे किसी को कुछ नहीं समझते, अधीर हो जाते हैं। इस बुराईसे बचना भी धर्म है।

क्षमा—किसी निर्बलसे अपराध हो जाने पर बलवान्का उसे क्षमा कर देना, उसे नष्ट करनेकी शक्ति होते हुए भी उसका प्रयोग न करना।

दमः—मन को विषयोंसे बचा कर रखना। चक्षु, कर्ण आदि ज्ञानेद्रियों और हाथ-पाँव आदि कर्म-इन्द्रियोंको भी विषयोंमें न जाने देना।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अस्तेयम्—मन, वाणी और शरीरसे चोरी न करना और न चुराई हुई वस्तुको प्रयोगमें लाना।

शौचम्—मन, वाणी और शरीरको अपवित्र भावों और अपवित्र पदार्थोंसे बचा कर रखना।

इन्द्रियनिग्रहः—इन्द्रियोंको उनके सामने सभी विषयोंके उपस्थित होने पर भी उनपर रोक लगाना। हानि-लाभ सोचकर उन्हें विषयोंमें प्रवृत्त होना।

धीः—बुद्धिको बढ़ाना—बुद्धिवर्धक उपायोंको काममें लाना।

विद्या—बुद्धि द्वारा नयी नयी विद्याओंको सीखना—विद्वान् बनना। मूर्ख न रहना।

सत्यम्—सत्य व्यवहार करना, जीवनको सत्य स्वरूप बनाना।

अक्रोधः—किसी दीन अनाथ बालक और अज्ञानी आदि द्वारा अपराध हो जाने पर भी क्रोध न करना। 'अक्रोध' का दूसरा अर्थ यह भी हो सकता है कि क्रोधको वशमें रखकर उसका सामयिक प्रयोग करना। नितान्त क्रोधशून्य तो न कोई हुआ है और न होना ही चाहिये। अतः रामचन्द्र, कृष्णचन्द्र और शङ्कर आदि अवतारोंने भी क्रोध किया है, परन्तु समय पर। अतः अक्रोध का अर्थ क्रोधका जीतना भी हो सकता है।

ये दस धर्म भी मानवधर्म होनेसे 'मुख्यधर्म' ही हैं, जो इस लोकमें सुख देते हुए परलोकमें भी मुक्तिदायक होते हैं।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यदि संक्षेपमें धर्मका व्यापक स्वरूप जानना चाहें तो महर्षि कणादका 'यतोऽभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः स धर्मः' यह लक्षण प्राप्त करना चाहिये, अर्थात् धर्मका व्यापक रूप वही है कि जिससे सांसारिककार्य भी सुचारुरूपसे सम्पन्न हों और अन्तमें मोक्ष भी प्राप्त हो जाय। इसका तात्पर्य भी मानव-धर्मसे ही है।

स्वीकृत धर्म त्याज्य नहीं

यो धर्मो दृढभावेन, स्वीकृतो हृदयेऽङ्कितः।
नाऽसौ कदापि सन्त्याज्यः, प्राणैः कण्ठगतैरपि ॥८॥

जिस धर्मको या कर्तव्यको हमने दृढ़भावनासे स्वीकार करके अपने हृदय पटलपर अंकित कर लिया हो कि 'अव मेरा धर्म यही है' तव उसे कभी भी—प्राणों के कण्ठ तक आजाने पर भी—परित्याग न करना चाहिये। इसका स्पष्टार्थ यह है कि जिस कर्तव्यको सच्चे हृदयसे और शास्त्रों द्वारा निश्चित किये हुए भावोंसे भी परिपक्व कर लिया हो उसका पुनः परित्याग कैसा? तव तो मर जाना ही उत्तम है उसे छोड़ना कदापि न चाहिये। तभी तो विदुरने कहा है कि—

'न जातु कामान्न भयान्न लोभाद्, धर्मं त्यजेज्जीवितस्यापि हेतोः।'
धर्मो नित्यः, सुखःदुखे त्वनित्ये, जीवो नित्यो हेतुरस्य त्वनित्यः॥

जिस कर्तव्यको धर्म मानकर स्वीकार कर लिया हो उसे कामवश होकर अथवा धनप्राप्तिके प्रलोभनमें आकर या मृत्यु-

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
भयके उपस्थित होनेपर भी अथवा उस धर्मके छोड़ने पर जीवनदान मिलने पर भी—कभी न छोड़े। क्योंकि ये सुख या दुःख तो अस्थिर पदार्थ हैं,—कभी सुख है तो कभी दुःख है, एकसा तो कोई भी नहीं रहता—किन्तु धर्म तो इस लोकमें भी और परलोकमें भी साथ रहनेवाला नित्य पदार्थ है। पुनश्च धर्मका आश्रय, जीवात्मा तो नित्य है; परन्तु सुख-दुःखका आश्रय यह शरीर तो अनित्य है—यह आज नहीं तो कल अवश्य ही नष्ट होनेवाला पदार्थ है। अतः धर्मको बहुमूल्य पदार्थ समझकर उसका परित्याग कभी न करना चाहिये। जैसे कि भारतीय आर्य्यवीर और आर्य्यदेवियाँ धर्मकी रक्षाके लिये बलिवेदी पर प्राण देती रहीं हैं और आज भी दे चुकी हैं।

धर्मके कारण भी रक्षणीय हैं

संस्कृते रक्षणं यच्च. यच्च, साहित्य-रक्षणम्।
जातिसंरक्षणं यच्च, सर्वं धर्मस्य रक्षणम् ॥ ९ ॥

आर्य्य-संस्कृति, आर्य्य भावना, आर्य्य सभ्यता, आर्य्य-साहित्य-वेदादिशास्त्रसमूह और आर्य्यजातिकी रक्षा करना भी धर्मकी ही रक्षा है। क्योंकि पूर्वोक्त तीनों विषय धर्मकी रक्षाके साधन माने गये हैं। साधनोंकी रक्षा भी परम्परया धर्मकी रक्षा ही है।

परिस्थिति के अनुसार धर्म बदलता है

धर्मोऽयं भिन्नकालादौ, भिन्नरूपधरो भवेत्।
क्वचिद् हिंसा क्व चाहिंसा, क्वचित् 'सत्यम्' क्व चानृतम् ॥ १० ॥
CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्वचिद्दया निर्दयता, क्वचित् स्तेयमपिच्छलम् ।
क्वचित् शौचमशौचं च, क्वचिन्मृत्युश्च धावनम् ॥११॥
एवं धर्मस्य मीमांसा, दुरूहा स्वल्पबुद्धिभिः ।
शास्त्रानुसारात् निश्चेया, यथा धर्मान्न हीयताम् ॥१२॥

यह धर्म, भिन्न-भिन्न देश, काल और अवस्थाओंमें-परिस्थिति के अनुसार भिन्न-भिन्न रूप भी धारणकर लेता है। जैसे—

(१) कहीं पर हिंसा करना भी 'धर्म' माना गया है। जैसे—आततायीका वध, संग्राम होनेपर शत्रुका वध आदि अवसरों पर हिंसामें कोई पाप नहीं; अथवा वह हिंसा वास्तवमें अहिंसा है! वह छोटीसी हिंसा बड़ी हिंसाको रोकनेवाली होती है। शास्त्रोंमें आततायी ये हैं[1]— जनपूर्ण घरोंमें अग्नि लगानेवाले, कूएँ के जलों या भोजनोंमें विष मिलानेवाले, शस्त्रधारी होकर निरीह जनतापर आक्रमण करनेवाले, बलपूर्वक दूसरोंका धन छीननेवाले, दूसरोंकी स्त्री, बहिन या कन्याको बलपूर्वक अपहरण करनेवाले और दूसरोंकी भूमिको दबाकर अपना बनाने या दूसरेकी उपजको बलपूर्वक उठानेवाले व्यक्ति या व्यक्ति समूह 'आततायी' कहे जाते हैं। मनुने इन आततायियोंके विषयमें लिखा है कि—इन आततायियोंको एक साथ ही मार दो[2]

---

१ अग्निदो गरदश्चैव, शस्त्रपाणिर्धनापहः। दारक्षेत्रापहर्ता च, षडेते आततायिनः (वसि०, ३ अ०)

२ देखिये—मनु, अ० ८,३५०-५१ श्लो०

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
और इनकी उच्चवर्णता या दयनीयताका भी विचार न करो।

(२) कहीं पर पूरा अहिंसाव्रती होना ही धर्म है। उस समय हिंसाका संकल्प उठना भी पाप है। जैसे—कोई शरणार्थी होकर ही आया हो या कोई दीन दुखिया या अपाहिज हो, इनको तो कभी न मारना चाहिये। दूसरे, अपने संकल्पोंको भी इतना अहिंसामय रखे कि उसकी आत्मा सर्वथा सन्तुष्ट हो जाय। यह अहिंसा मानवीय नैसर्गिक जीवन है। किन्तु इन दो प्रकारकी अहिंसाओं की भी एक सीमा है। सुतरां सभी अवस्थाओंमें इससे काम न चलेगा। जैसे—कोई कपटी शरणार्थी बनकर आये या दीन बनकर सामने खड़ा हो जाय तो वह अहिंसाका पात्र नहीं है। ऐसे धूर्त आततायीको मारना ही धर्म है। इस असामयिक अहिंसासे ही महाराजा पृथ्वीराजकी हिंसा हुई थी; जो महान् राजनैतिक भूल थी। अतः महात्मा गान्धी की त्रैकालिक (सर्वदा) अहिंसा भी योगदर्शनके मुमुक्षुजनोंके ही योग्य थी और किसी विशेष परिस्थितिमें उपयोगिनी भी। अतः वह व्यक्तिगत रूपसे भले ही उत्तम हो; परन्तु वह सामाजिक या राजनैतिक नहीं हो सकती। वह तो त्यागियों या साधुओंके लिये ही उचित हो सकती है। किन्तु इससे सामाजिक काम नहीं चल सकते। वहाँ तो 'शठे शाठ्यम्'की नीतिसे ही काम चलेगा। अतः हिंसा और अहिंसाके प्रश्नको अत्यन्त गम्भीर विवेचनासे सरल करना चाहिये। प्राचीन भारतीय संस्कृति तो महाभारत और रामायणके अनुसार विशेषतः वेदके

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
अनुसार ऐसी ही थी, जिसका वर्णन ऊपर हो चुका है। उक्त त्रैकालिक अहिंसा, आदर्शवाद भले ही हो, परन्तु यथार्थवाद नहीं हो सकती।

(३) कहींपर पूर्णतया सत्य-व्यवहार ही धर्म है। जब वादी और प्रतिवादी हमारे पास निर्णयके लिये आते हों, ऐसे अवसर पर किसी घनिष्ठ मित्र या सम्बन्धीका या पुत्रका भी पक्षपात न करना चाहिये, क्योंकि यह अवसर पूर्ण-सत्यनिर्णयका होता है। दूसरे, जबकि किसी विषयको अत्यावश्यक अवसर पर स्पष्ट रूपेण प्रकट करना हो तो सत्यार्थ ही प्रकाशित करना चाहिये। ऐसे ऐसे अवसरों पर सत्य ही धर्म है। तीसरे, अपना जीवन सत्यविचारोंसे इतना ओत-प्रोत बनाना चाहिये जिससे आत्मा सदैव सन्तुष्ट रहे।

(४) कहींपर असत्य बोलना भी 'धर्म' माना गया है। जैसे-किसी प्राणिविशेष या वर्गकी रक्षा करना अभीष्ट हो। मनु भी इस विषयमें ऐसी ही सम्मति रखते हैं[1] कि जिस सत्यके बोलनेसे शूद्रसे लेकर ब्राह्मणतक किसीका भी वध होता हो; वहां असत्य बोलना सत्यसे भी उत्तम माना गया है।' महाभारतमें भी ऐसा ही लेख मिलता है[2]। जहाँ न बोलनेसे जनतामें सन्देह होनेका भय हो—कुछ न कुछ बोलना आवश्यक ही हो-तो वहां

---

१ देखिए—? अ० ८, श्लो० १०४

२ देखिये—२ महा०, शा० प० १९९ अ०, १६ श्लो० वनपर्व, २०८ अ०, ४ श्लो०

५

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जनहितार्थ (स्वार्थ निमित्त नहीं) असत्य बोलना सत्यसे भी श्रेष्ठ है।' दूसरे, न तो ठीक ठीक बोलना ही सत्य है और न अतत्त्व बोलना मिथ्या है। सत्यकी रूपरेखा तो यही है कि जिससे अधिकसे अधिक प्राणियोंका वध रुक सके या उनका बचाव हो जाय।' ये तो हैं शास्त्रीय महान् विचार! इसपर तिलकने भी गीतारहस्यमें स्वविचार अत्यन्त स्पष्ट किया है।

किन्तु इन शास्त्रोंकी आड़ लेकर प्रत्येक बातमें असत्य बोलना और उस भाषणमें अपनी चतुरता समझना, मानवीय पतन है, अपनी विश्वास पात्रताका विध्वंस है—यह धर्मशास्त्रका दुरुपयोग है—अपने जीवनको भी कलंकित करना है। अतः इसका प्रयोग, विशेष परिस्थितियोंमें ही लाभदायक हो सकता है। इसे तो अपवाद ही समझना चाहिये।

(५) कहीं पर दया करना ही धर्म माना गया है। जैसे—दीन दुःखियोंकी धनादिसे सहायता करना, शरणागतकी रक्षा करना, गोशाला, अनाथालय और विधवाआश्रम आदि खोलकर उन अनाश्रितोंको आश्रय देना।

(६) किन्तु कहीं पर निर्दय होना भी धर्म माना गया है। जैसे—चोर-डाकू और अत्याचारी या आततायीको दण्ड देना हो; उस समय दयाकी भावनासे काम न चलेगा। जब चोर या वञ्चक अवसरवादी बनकर दयाकी भिक्षा मांगे तो उस पर दया करना ठीक न होगा। यही भूल महाराज पृथ्वीराजने शहाबुद्दीन गोरीकी वञ्चनामयी दया भिक्षा मांगने पर, उस पर

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दया दिखाकर की। मनुने भी इस सिद्धान्तको पुष्ट किया है[1]।

(७) कहीं पर चोरी करना भी अपराध नहीं माना गया है। यथा—दुर्भिक्षके समय बच्चे भूखे मर रहे हों, जीविकाका साधन भी न हो, तब अन्नमात्रकी चोरी करना पाप नहीं है। उस अन्नसे बच्चोंकी रक्षा करना धर्म है। मनु भी इसकी पुष्टिमें कहते हैं[2] कि बूढ़े माता-पिता, सदाचारिणी स्त्री और छोटे-छोटे बच्चोंको जैसे-तैसे पालना ही चाहिये, चाहे उसमें कोई पाप भी क्यों न करना पड़े। (२) कोई निर्धन यात्री भूखा होकर किसीके खेतसे ईख या मूली खाने के लिये उठा ले तो उसे क्षेत्रपति और राजा दण्ड न दे। (३) भूखा यात्री भूख मिटानेके लिये किसी खेतसे मूली या फल ले ले या अग्निके लिये कुछ ईन्धन ले ले या भूखी गायको खिलाने के लिये कुछ घास ले ले तो मनुके मतमें वह चोरी, चोरी नहीं समझी जाती। लोकमान्य बालगङ्गाधर तिलकने भी गीतारहस्यमें[3] इसी पक्षको पुष्ट किया है और इसी पृष्ठपर "हाब्स" नामक पाश्चात्य व्यक्तिका विचार भी इसीकी पुष्टिमें दिया गया है। इसका तात्पर्य केवल संकटके समय अन्नमात्रसे परिवारका रक्षणमात्र ही ध्येय है, इसकी आड़ लेकर अपनी अनुचित आवश्यकताओं

---

१ देखिये—मनु, ७ अ० १८ श्लो०

२ देखिये—मनु, ११ अ० ११ श्लो०, ६ अ० ६९ श्लो०, ८ अ० ३३९ श्लो०।

३ देखिये—गीतारहस्य, पृष्ठ २८ और २९।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को पूरा करना कदापि नहीं। वह चोरी होगी और अवश्य अपराध माना जायगा।

(८) कहीं पर छल करना भी धर्म मान लिया जाता है—जब कि हम आततायीको सामने आकर न मार सकते हों तो उसे छिपकर या छल करके मारनेमें भी कोई दोष नहीं। रामचन्द्रने आततायी वालीको छिपकर मारा था। कृष्णचन्द्रने ब्राह्मण बनकर ही भीमसेनसे जरासन्धको मरवाया था। द्रोणाचार्य्यको मरवाने के लिये वस्तुतः अश्वत्थामाके न मरने पर भी इस नामवाले एक हाथीको मरवाकर एवं सत्यवक्ता युधिष्ठिरके मुखसे 'अश्वत्थामा हतः' कहवाकर शस्त्ररहित द्रोणाचार्य्यको मरवाया गया इत्यादि। अतः ऐसे अवसरों पर छल प्रयोग भी धर्म माना गया है। मनुने भी छलको समय पर प्रयुक्त करना ठीक माना है[1]। अतः यदि उद्देशमें निर्मलता हो तो छल प्रयोग भी धर्म है।

(९) कहीं पर पूर्ण पवित्र रहना ही धर्म है। जैसे—सन्ध्या, पाठ, पूजा, जप, होम और पुरश्चरण आदिके अवसर पर पूर्ण पवित्रता चाहिये।

(१०) किन्तु कहीं पर अपवित्र रहना या अपवित्र हो जाना भी दोष नहीं है। जैसे—सैनिक-जीवनमें, यात्रामें, रोगावस्थामें या संकटावस्थामें अपवित्र रहना कोई अपराध नहीं। किसी प्राणीके अमेध्य स्थानमें फँस जाने पर उसे वहांसे निकालने

१ देखिये—मनु, अ० ८, श्लोक ४९।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के लिये तो अपवित्र हो जाना धर्म ही है। अनन्तर स्नान कर लिया जाय। आपत्कालमें तो अभक्ष्य भक्षण और अस्पृश्य-स्पर्शनमें भी कोई दोष नहीं माना गया है।[1] विश्वामित्रने तो प्राणरक्षाके लिये कुत्तेका मांस भी खा लिया था। अतः संकटकालीन अपवित्रता भी क्षम्य है।

(११) किसी अवसर पर प्राण देना भी धर्म माना गया है जैसे—राजा शिवि और युवराज जीमूतवाहनने दूसरेकी रक्षाके लिये अपने प्राणतक दे दिये थे। अथवा यज्ञ और धर्मकी, गौ और ब्राह्मणकी, अनाथ और वृद्धकी, स्त्री और बालककी रक्षाके लिये अपने प्राण देना ही धर्म है। श्रीगुरुगोविन्द सिंहके पुत्रोंने तो बाल्यकालमें ही धर्मकी रक्षाके लिये अपने प्राणतक बलिवेदीपर चढ़ा दिये थे एवं हकीकतरायने भी मरना स्वीकार किया, परन्तु धर्म छोड़ना स्वीकार न किया।

(१२) कहींपर भाग कर प्राण बचाना भी धर्म है—जबकि शत्रुके द्वारा बहुपक्षमें प्रबल आक्रमण हो, यदि हम निःशस्त्र और असहाय हों तो भागकर भी प्राण बचाना धर्म माना गया है। जैसे—जरासन्धके प्रबल-अप्रतीकार्य्य-आक्रमण करनेपर श्रीकृष्णका सम्बन्धियों सहित भाग जाना—एक सामयिक धर्म था।

ऐसे अन्यान्य विषयोंमें भी धर्मकी मीमांसा (जांच) करना स्वल्पबुद्धिवालोंके लिये कठिन कार्य है। ऐसे अवसरोंपर तो

१ देखिये—पराशर, अ० ७, ४१ श्लोक।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शास्त्रोंके द्वारा ही निश्चय करना ठीक होगा। अथवा अन्तरात्मासे निकली हुई पवित्र ध्वनिको इन शास्त्रोंसे मिलाकर, स्वार्थ भावनासे सर्वथा रहित होकर कर्तव्य कर्म करना चाहिये। जिससे धर्म जैसी अमूल्य वस्तु हमारे हाथसे छिन न जाय। महाभारतमें भी धर्मकी ऐसी ही व्याख्या की गई है[1]।

साधारण दशाका धर्म और है, किन्तु कठिनकाल या संकटकालका धर्म और है। ऐसा कोई धर्म नहीं, जो सदा एक जैसा रह सके। वह तो देशकाल और अवस्थाके अनुसार बदलनेवाला ही माना गया है।

अवस्थाभेदसे नीति भी धर्म है

मायिनं प्रति माया स्याद्, आर्जवं प्रति चार्जवम्।
नैषा नीतिर्धर्म एषोऽधर्मस्तद् विपरीतता ॥१३॥
धर्मो नीतिश्च मार्गौ द्वौ, भिन्नौ कैश्चित् प्रकाशितौ।
वस्तुतो नीतिमार्गोऽपि, धर्मः स्याद्देशकालगः ॥१४॥
नहि नैतिकभावाढ्यो, धर्महीनः प्रकथ्यते।
उद्देशो धर्मरक्षा चेन्नैतिकोऽपि स धार्मिकः ॥१५॥

'मायावीके साथ मायावी बनकर रहना और साधुके प्रति

---

१ 'अन्यो धर्मः समस्थस्य, विषमस्थस्य चापरः। न कोप्यात्यन्तिको धर्मो धर्मस्त्वावस्थिको मतः।

२ नहि सर्वविधः कश्चिदाचारः सं प्रवर्तते। तेनैवान्यः प्रभवति सोऽपरं बाधते पुनः। —महा० शा० २५९. १८

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधु' इस भावनाको कई विद्वान् 'नीति' कहते हैं, किन्तु वास्तव में यह धर्म है; नीति नहीं। प्रत्युत मायावीके साथ साधुताका व्यवहार करना अधर्म ही है। दुष्टके साथ साधु व्यवहार करना—उसकी दुष्टताको बढ़ावा देना है। इसलिये ऐसा करना अधर्म है, पाप है। कई विद्वान् नीति और धर्मको पृथक् तत्त्व मानकर दोनोंके भिन्न-भिन्न मार्ग प्रकाशित करते हैं। वे लोग नीतिको धर्मसे अल्प सम्मान देते हैं। परन्तु वास्तवमें ऐसा नहीं है। यदि उद्देश धर्मरक्षा या धर्मिरक्षा हो तो देशकालानुसार चलाया हुआ नीतिमार्ग भी धर्म ही है। ऐसा कभी नहीं हुआ कि नैतिकभावपूर्ण विद्वान्को किसीने धर्महीन कहा हो। श्रीकृष्ण स्वयं योगेश्वर युक्तिविशारद अतएव नैतिक विद्वान् थे। एवं बृहस्पति, शुक्राचार्य्य, चाणक्य और विदुर आदि प्रखर नैतिक विद्वान् हो गये हैं, किन्तु इनमेंसे किसीको भी किसीने धर्महीन नहीं कहा; प्रत्युत उनमेंसे किसीको धर्मावतार, किसीको धर्मरक्षक और किसीको धर्ममूर्ति ही कहा गया है। अतः सिद्ध होता है कि उद्देश यदि धर्मरक्षा हो तो नैतिक विद्वान् भी धार्मिक माने जाते हैं। इसकी पुष्टिमें साक्षात् वेदके दो प्रमाण किये जाते हैं।

"[1]हे वज्रधर बलशाली राजन्! आप वैद्युत् प्रयोगोंसे बड़े-

---

(१) इन्द्र। तुभ्यमिदद्रिवोऽनुत्त वज्रिन्! वीर्यम्। यद्ध त्यं मायिनं मृगं, तमुत्वं माययाऽवधीः, अर्चन्ननु स्वराज्यम्। ऋ० १।८०।७। (२) त्वं मायाभिरप मायिनं धमः। ऋ० १।५१।५।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बड़े पर्वतोंको भी तोड़कर अपने ध्येय स्थानतक पहुँचनेवाले हो, यह समग्र शक्ति आपके लिये ही उपस्थित है। आप उस मायावी अन्वेषकको मायासे ही मारो, इस स्वराज्यकी ठीक-ठीक रक्षा तभी हो सकेगी। (२) "हे इन्द्र! तू अपने मायावी शत्रुओंको मायासे ही नष्ट करता है।" इस प्रकार मायावीके प्रति मायाके प्रयोग को धर्म माननेवाले वेदके आधारपर ही महाभारतमें भीष्मने धर्मपुत्र युधिष्ठिरके प्रति धर्मपूर्वक राज्यप्रवन्धकी व्यवस्था प्रकाशित करते हुए कहा है कि[1]—

"जो मनुष्य जिसके साथ जैसा व्यवहार करे उसके साथ उसे वैसा व्यवहार करना 'धर्म' है (नीति नहीं)। यदि कोई मायावी बनकर आये तो उससे मायावी बनकर व्यवहार करो, किन्तु जो तुमसे साधुताका व्यवहार करे—तुम्हारे सामने निष्कपट जीव बनकर आये तो तुम भी उससे साधु जैसा व्यवहार करो, तब उसके साथ कपट करना भी अवश्य पाप है। मायावीके साथ साधुके समान सरल व्यवहार भी अधर्म है—पाप है। अतः नीति भी 'धर्म' ही है। तभी तो श्रीकृष्णजीने 'नीति' को अपना ही रूपदिया है 'नीतिरस्मि जिगीषताम्' (गीता) अर्थात् जीतने वालोंमें जो परस्पर नीति वर्ती जारही हो वह मेरा ही स्वरूप होती है; केवल वह नीति 'धर्माऽविरुद्ध' हो—धर्मके विपरीत न हो—कूटनीति न हो।

---

१ 'यस्मिन् यथा वर्तते यो मनुष्यस्तस्मिन् तथा वर्तितव्यं स धर्मः। मायाचारो मायया बाधितव्यः साध्वाचारः साधुनाभ्युपेयः।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नीतिको धर्म माननेमें एक युक्ति भी है—जो हमें माया द्वारा मारना चाहता है, उसकी मायाका उद्देश हमें मारना है—हमारा अपराध न होनेपर भी हमें मिटाना है, किन्तु जब हम उस मायावीपर मायाका प्रयोग करते हैं तो हमारा उद्देश उस मायावीकी मायाको नष्ट करना है जिससे वह पुनः अन्यत्र उसका प्रयोग न कर सके। इस संघर्षमें यदि वह मायावी मारा भी जाय तो और वात है। यदि उसकी मायाके साथ-साथ उस मायावी को भी समाप्त करना उद्देश्य हो तो भी उसका फलोद्देश धर्म और धर्मीकी रक्षाकरना-दोनोंको वचाना ही है। अतः उसका माया-प्रयोग अधर्म और हमारी मायाका प्रयोग धर्म है, क्योंकि हमारा उद्देश निर्मल अतएव उत्तम है। त्रिगुणात्मक जनोंके साथ एक जसा भाव रखा ही कैसे जा सकता है ?

इसमें एक वात स्मरण रखनी चाहिये कि मायाका प्रयोग एक शस्त्र है। इसका प्रयोग शत्रुता प्रकाशित करनेवाले शत्रुओंमें ही होना चाहिये। परन्तु, सधर्मियों और सहयोगियोंमें इसका प्रयोग कदापि नहीं करना चाहिये। ऐसा करना मानो यादवों की तरह परस्पर लड़कर मिट जाना होगा। परस्परमें, एकधर्म-वालोंमें इसका प्रयोग तो अपनों पर ही हुआ समझकर उसे अपना ही नाश समझना चाहिये।

यस्यां परिस्थितौ यो हि, धर्मत्वेन व्यवस्थितः।
स तस्यां सर्वभावेन, तादृशः स्वीकृतो बुधैः ॥ १६ ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किन्तु यहाँ यह प्रश्न उपस्थित होता है कि जब धर्मको चौथे श्लोकमें एक रस रहनेवाला कहा गया, तो पुनः नवें और दसवें श्लोकमें देशकालानुसार उसे बदलनेवाला कहा गया। यह परस्पर विरोध क्यों? एक रस रहनेवाला बदल क्यों जाता है? तो इसका उत्तर यह है कि जो धर्म जिस परिस्थितिमें 'धर्म' कहा गया है वह उस परिस्थितिमें सदैव वैसा ही माना जाता है। उस परिस्थितिमें स्वीकृत वह धर्म बदल नहीं जाता। हिंसाको जिस परिस्थितिमें धर्म माना गया है, वह उस परिस्थितिमें वैसी ही रहती है। वह हिंसा उसी परिस्थितिमें कभी अहिंसा रूपमें नहीं बदल जाती। एवं दया करनेकी अवस्थामें निर्दय न बनना और निर्दय बनने की दशामें दयालु न बनना ही उसकी 'एक रसता' है। अतः 'धर्म सदा एकरस रहता है' यह सिद्धान्त ज्यों का त्यों ठीक ही सिद्ध होता है।

कर्तव्य भी धर्म माना जाता है—

वर्णाश्रमाणां धर्मा ये तेऽपि कर्तव्यगा मताः।
वर्णाश्रमाणां मर्य्यादा, तैर्धर्मैं रक्षिता भवेत् ॥ १७ ॥

वर्णों और आश्रमोंके धर्म जो वर्णप्रकरण और आश्रम-प्रकरणमें क्रमपूर्वक कहे जायँगे वे भी कर्तव्य रूपमें माने गये हैं। वहाँ धर्मका 'कर्तव्य' अर्थ है। इन्हीं धर्मों वा कर्तव्योंसे वर्णों और आश्रमोंकी मर्य्यादा सुरक्षित रखी जा सकती है। इन कर्तव्योंके पालन करनेसे जीवन सम्बन्धी अनेक उलझनें सुलझ

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाती हैं। मानवजीवनकी उच्चता इन्हीं वर्णों और आश्रमोंमें विद्यमान है। क्योंकि ये धर्म सबके अपने-अपने हैं, अतः ये 'असाधारण-धर्म' कहे जाते हैं। किन्तु जो धर्म सब वर्णों और आश्रमोंमें एक जैसे हैं वे 'मुख्यधर्म' या 'साधारण धर्म' कहे जाते हैं। वे ही 'मानवधर्म' भी कहे जाते हैं।

उपधर्मोंका वर्णन—

> यो धर्मः सर्ववर्णानां, जातिमात्रप्रसाधकः।
> शिखासूत्रादिरूपो वा, स्रक्तिलकादिरूपकः ॥१८॥
> उपधर्मः स विज्ञेयः, प्रीतिदः स्वास्थ्यदायकः।
> मुख्यधर्मस्य पोषी स्यात्, संन्यासे त्यज्यतेऽपि सः॥१९॥

चोटी, जनेऊ, माला, तिलक, कच्छ (लाँग) जो सभी वर्णों के समान माने गये हैं वे सब उपधर्म हैं—सहायक धर्म हैं, मुख्यधर्मको पुष्ट करनेवाले और जातिको भी संगठित करनेवाले हैं। अतएव इनको साम्प्रदायिक धर्म भी कहते हैं। इन उपधर्मों से जहाँ परस्पर प्रीति बढ़ती है, वहाँ एक दूसरेकी रक्षाका भाव भी बढ़ता है। स्वास्थ्यपर भी इनका उत्तम प्रभाव पड़ता है। परन्तु ये नित्य धर्म नहीं हैं, यतः ये संन्यासकालमें छोड़ भी दिये जाते हैं। इनके उपधर्म होनेमें भी यही रहस्य है कि सदा नहीं रहते, केवल ये मुख्य धर्मोंके सहायक बने रहते हैं। फिर भी आर्य्य चिह्न होनेसे ये रक्षणीय हैं। मनुने भी इनका नाम निर्देश किया है। जैसे—'एष धर्मः परः साक्षाद्, उपधर्मोऽन्य उच्यते।'

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(२।२३७) अर्थात् माता-पिता और गुरुकी सेवा करना मुख्य धर्म है और शेष धर्म 'उपधर्म' हैं, अर्थात् छोटे धर्म हैं।

मुख्य धर्मकी विशेषता

उपधर्मविहीनोऽपि, मुख्यधर्मस्य रक्षकः।
भक्ष्याभक्ष्ये पराधीन आर्य्यश्चेदार्य्य एव सः ॥२०॥

यदि किसी आर्य्यने मुख्यधर्मों और कर्तव्यधर्मोंकी हृदयसे रक्षा की है और वह आर्य्यसंस्कृति तथा आर्य्य-साहित्यसे भी प्यार करता है, साथ ही आर्य्य-जातिको ही अपनी जाति मानता है, तब चाहे उसमें किसी उपधर्मकी न्यूनता भी हो तो भी उसे पूरा, सोलह आना, आर्य्य ही समझना चाहिये। यदि वह विदेश, संकट और रोगादिमें भक्ष्य और अभक्ष्यमें पराधीन हो गया है तो भी वह आर्य्य ही है। धर्म कोई ऐसा दुर्बल तत्व नहीं जो अभक्ष्य भक्षण या अस्पृश्यस्पर्शसे मिट जानेवाला हो। वह तो अन्तरात्माका गुप्त तत्त्व है—हृदयकी मूकध्वनि है, जिसको कोई मिटा नहीं सकता, जबतक कि वह स्वयं धर्महीन न हो जाय। मनुने भी इसकी पुष्टि की है—(६।६६) अर्थात् मनुष्य चाहे जिस आश्रममें भी हो, उसमें चाहे कितने दोष भी आ गये हों, तो भी वह सबमें समताका भाव रखता हुआ धर्म करता चले। क्योंकि किसीके धर्मात्मा होनेमें कोई चिह्न नियत नहीं है कि अमुक शिखाधारी या तिलकधारी अवश्य धर्मात्मा होगा। उसमें तो जीवनकी श्रेष्ठता और कर्मोंकी उच्चता अपेक्षणीय होती है।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किसी स्वजनका परित्याग न करना चाहिये—

कुसङ्गाच्च दुराचाराद्, ब्राह्मणादर्शनात्तथा ।
चेत् कश्चिद् धर्महीनः स्यात्, सोऽपि रक्ष्यः प्रयत्नतः॥२१॥
पापाद् घृणा हि कर्तव्या, पापिनो न कदाचन ।
पापिनः पापशुद्धिस्तु, धर्मेणैव भविष्यति ॥२२॥
वेश्याऽपि न घृणायोग्या, दयायोग्या हि सा मता ।
दोषापनोदः कर्तव्यो, येन सा निर्मला भवेत् ॥२३॥

यदि कोई व्यक्ति कुसङ्गतिसे या किसी निकृष्ट आचरणसे अथवा ब्राह्मणोंके सत्सङ्ग न मिलनेसे मुख्य धर्मोंका भी उपेक्षक हो गया है—आर्य्य पद्धतिसे भी गिरने लग गया है या गिरगया है, तब भी हमें उसकी उपेक्षा न करनी चाहिये। सभी यत्नोंसे उसको बुराईसे बचाना चाहिये। यह अपराध उसका नहीं; समाजका ही अपराध है। जिससे सत्कुलमें उत्पन्न होकर आर्य्य-संस्कारोंसे पला हुआ होकर भी विधर्ममें जा रहा है। अतः हमें उसे सँभालना चाहिये। चाहे गिरनेवाला व्यक्ति हो या समूह, वह दयाका पात्र है, उपेक्षाका पात्र नहीं। यदि कोई तैरना न जाननेसे डूब रहा है तो उसे उबारना ही धर्म है, न कि उसे और धक्का देकर नीचे ढकेल देना। मेरा मत तो यह है कि हम पापसे भले ही घृणा करें, यतः वह नरकमें ले जानेवाला है, परन्तु पापीसे घृणा कभी न करें। पापीकी पापशुद्धि तो उससे धर्म करानेसे ही होगी, घृणासे तो वह हमसे और भी दूर होता

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जायगा। सच तो यह है कि हमें वेश्यासे भी घृणा न करनी चाहिये। उसपर भी दया करना ही ठीक है। उसकी भी बुराई हटानेका प्रयत्न हमें करना चाहिये। जिससे वह भी पापाचरणसे दूर और निर्मल होकर देव-दुर्लभ मानव-जीवनको उच्च बना सके। बस, यही 'आर्य्यधर्म' था कि सबको बचाओ। अतः हमें इतना उच्च जीवन प्राप्त करना चाहिये कि हम नीचे गिरे हुए को ऊपर उठा सकें; न कि उसे धक्का देकर और भी नीचे गिरा दें।

अतः सर्वप्रयत्नैः स, संशोध्यो मानवो यतः।
मानवस्योन्नतौ धर्मस्योन्नतिर्मन्यतां बुधैः ॥२४॥
तस्माद् धर्मो महान् श्रेष्ठो, जगन्मात्रस्य रक्षकः।
तद्रक्षणं मुख्यकर्म, मन्तव्यं धर्मभीरुभिः ॥२५॥

इसलिये हमें अपनी सम्पूर्ण शक्तिसे मनुष्यमात्रको उच्च विचारोंमें लाना चाहिये। मनुष्यमात्र ही मनुकी सन्तान है। मनुष्यकी उन्नतिसे, व्यक्तिकी उच्चतासे जातिकी उच्चता होगी। उसके द्वारा धर्मकी भी उन्नति हो सकेगी। इसलिये हमें धर्मको महान् श्रेष्ठ तत्व समझना चाहिये। क्योंकि सम्पूर्ण जगत्की रक्षा इसीके आश्रयपर हो रही है। अतः धर्मका भय रखनेवालोंको उसकी रक्षा करना मुख्य कर्तव्य समझना चाहिये।

इति धर्मस्वरूपमीमांसाप्रकरणम् ॥ ३ ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अथ मानव-धर्म-प्रकरणम् ।

यो धर्मो मानवानां वै, समेषां हितकारकः ।
तस्य प्रचारः सर्वत्र, कर्तव्य इति मन्मतम् ॥१॥

जो धर्म मनुष्यमात्रको सुखदेने वाला हो उसका प्रचार सभी मनुष्योंमें करना चाहिये । क्योंकि मानवधर्मकी यही विशेषता है कि वह मानवमात्रको दिया जा सकता है । वह किसी विशेष जातिके लिये नियन्त्रित नहीं होता, वह साम्प्रदायिक तो कभी हो हीं नहीं सकता । प्रत्युत वह धर्म मानवमात्रको ही एक सम्प्रदाय वना लेता है । यह मेरी सम्मति है । मनु भी मानवमात्रको धर्मका अधिकारी वना गये हैं—(मनुः २।९) अर्थात् मनुष्यमात्र वेद और स्मृति द्वारा कहे हुए धर्मका पालन करता हुआ उभय लोकको सुधार लेता है ।

देवदर्शनजं पुण्यं, जगतस्तारकं यतः—
तस्मात् सर्वे जना देव-दर्शनेऽधिकृताः कृताः ॥ २ ॥
यो देवो मुख्यजातीनां, परमुद्धारको भवेत् ।
नाऽसौ देवो वस्तुगत्या, पक्षपातपरो हि सः ॥ ३ ॥
सूर्य्यवाय्वादयो देवाः, सन्तु चेत् सर्वसौख्यदाः ।
यः प्रभुः सर्वदेवेशः, सोऽपि स्यात् सर्वसौख्यदः ॥४॥

यतः देवदर्शनका पुण्य जगत् मात्रका उद्धारक है इसलिये सभी मनुष्योंको देव-दर्शनका जन्मसिद्ध अधिकार है । परन्तु जो भगवान् अपने दर्शनसे केवल मुख्य-मुख्य जातियोंका

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही उद्धारक हो और शेष, अशेष जन उसके दर्शनसे वञ्चित रखे जायं—उनके आनेमें मुख्य जातिवालों द्वारा रोक लगा दी जाय, इस प्रकारका पक्ष-पाती बनाया हुआ देव वास्तवमें देव नहीं जिसके पूजकोंने उसके दर्शनपर रोक लगा रखी है। जब कि सूर्य्य, वायु, अग्नि, जल, पृथिवी आदि देवगण प्रकाश, जीवन और अन्नादिका दान समान भावसे मनुष्यमात्रके लिये दे रहे हों; तब वह प्रभु, जो इन देवोंका भी देव है, उक्त देव भी जिसके शासनपर नियमपूर्वक चल रहे हों, उसे भी तो सबके लिए समान भावसे सुखदायक होना चाहिये—उसका दर्शन सुख भी तो सबको मिलना चाहिये।

सच तो यह है कि प्रभु तो सर्वसुखदायक है ही; और सबको दर्शन सुख दे भी रहा है, किन्तु उसके अदूरदर्शी पुजारियोंके अपराधसे प्रभुपर ये असङ्गत दोष आरोपित किये गये हैं। अतः इन दोषोंको प्रभुपर न लगाकर प्रभु-पूजकोंपर ही लगाना चाहिये।

कई अदूरदर्शी प्रभुपूजक विद्वान् मूर्तिके दो भेद करते हैं—'एक संस्कृतमूर्ति दूसरी प्राकृतमूर्ति। संस्कृतमूर्ति वह है जिसका संस्कार करके और उसमें प्राण-प्रतिष्ठा करके मन्दिरमें स्थापित किया जाय। प्राकृतमूर्ति वह है जो प्रकृति द्वारा बनाई गई हो और सबके लिये खुले मैदानमें रखी गई हो, जैसे—सूर्य्य, जल, अग्नि, वायु आदि। इन दो प्रकारकी मूर्तियोंमें संस्कृत-मूर्तिका दर्शन तो वे परिमितजन ही कर सकते हैं जो संस्कार-

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धारी द्विज हों, किन्तु प्राकृतमूर्तिका दर्शन सभी कर सकते हैं।" इसपर हम कहते हैं—यदि ध्येय परमेश्वर दोनोंमें एक है तो प्राकृतमूर्तिमें बैठकर तो वह सबका कल्याण करे, किन्तु दूसरी (संस्कृतमूर्ति) में बैठकर केवल परिमित द्विजों या केवल मद्रास प्रान्तीय ब्राह्मणोंका ही कल्याण करे, यह कैसे माना जाय? क्या संस्कृत (संस्कारों द्वारा प्रतिष्ठित की गयी) मूर्तिमें बैठा हुआ परमेश्वर शूद्रोंसे कहेगा कि "भाइयो! मुझे अपने पूजकोंसे आज्ञा मिली है कि आप इसमें बैठकर केवल द्विजोंको ही दर्शन दें, शूद्रोंके आने पर आप मुँह छिपा लें। मैं इन संस्कार करनेवालोंकी आज्ञामें जकड़ा हुआ हूँ, अब मेरी स्वतन्त्रता नहीं रही। अतएव जाओ, तुम मेरा दर्शन प्राकृतमूर्तिमें करो।" क्या परमेश्वरकी यही परिस्थिति है? क्या उसका यही ईश्वरत्व है? क्या वास्तवमें ईश्वरका दर्शन हमारे ही हाथोंमें है? क्या हमने स्वयं भी उसके दर्शन किये हैं? क्या हम उसके स्वरूपको पहचानते भी हैं? इन प्रश्नोंका स्पष्ट उत्तर यह है कि हम उसके स्वरूपको पहचान ही नहीं सके, जिसके कारण ऐसी निर्मूल कल्पना करके हम अपनी विद्वत्ताको भी उपहासास्पद बना रहे हैं। मूर्तिमें हो ईश्वरका दर्शन और वह भी परिमित जनोंके लिए! यह वास्तविक दर्शनकी वञ्चना है, सत्यका अपलाप है।

वेदा अपि प्रभोः श्वास-भूताः सर्वर्षिसम्मताः।
अतस्ते मानवैः पठ्याः, यतस्ते धर्मबोधकाः ॥५।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'शन्नः' 'तन्न' इमे शब्दाः, मानवार्थ-प्रकाशकाः ।
तस्माद् वेदाः सर्व-लोक-हिताय परिकीर्तिताः ।।६।।
तस्मात्तज्ज्ञानयोग्यो यः, स सर्वोऽधिकृतो मतः ।
सर्वेषां प्रीतये मोक्ष–दानाय च समा हि ते ।।७।।

इसी प्रकार वेद भी प्रभुका निःश्वास या प्रभुकी वाणी होनेके कारण सभीके लिए पठनीय हैं। वेदके ईश्वरीय ज्ञान होनेमें सब ऋषि एक मत हैं। वेद स्वयं भी कहता है कि "तस्माद् यज्ञात् सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे। छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद् यजु स्तस्माद जायत".यजुः । ३१।६ अर्थात् सभी वेद उसीसे प्रकट हुए हैं।

जब धर्मका अधिकारी मानव है तो धर्मबोधक वेद ग्रन्थका अधिकारी भी तो मानवमात्र है। दूसरा, वेदोंमें 'शन्नोदेवीः' "शन्नोमित्रः" "तन्नोअस्तु" "तन्न आसुव" इत्यादि प्रयोग अधिकतासे मिलते हैं, जिनमें सुख प्राप्ति 'हम सबके लिए' माँगी गयी है; तब क्यों न सभी मिलकर स्वयम् ऐसी प्रार्थना करें ? इसलिए जो भी वेदाध्ययनकी योग्यता प्राप्त करते जाँय वे सभी उपनीत होकर वेदाध्ययनमें प्रवृत्त होते जाँय। वेद सबके लिए लौकिक और पारलौकिक सुख देनेवाला है; अतः वेदों पर प्रतिबन्ध लगाना कि—"इनको जन्मजात त्रैवर्णिक ही पढ़ सकते हैं"— अमौलिक है, अतएव अप्रामाणिक भी है। महाभारतमें भी सबके लिए वेदाध्ययनकी साक्षी मिलती है—'[illegible] येषां

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ब्राह्मी सरस्वती। विहिता ब्रह्मणा पूर्वं लोभात्त्वज्ञानतां गताः।'
(महा० शां० १८८ अ०)

अर्थात् ब्रह्माने यह वेदवाणी चारों वर्णोंके लिए प्रकट की। परन्तु लोभवश लोग उसे भूलते गये। आगे इसी विषयको ही पुष्ट किया गया है—

यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्य ओम्।
इति श्रुतिश्च सर्वेषां, पुंसां कल्याणकृन्मता ॥ ८ ॥
'पावमानी द्विजानां' तु, या श्रुतिर्द्विजपाविका।
साऽपि वेदाऽध्येतृ–पुंसां, द्विजत्व–प्रतिपादिका ॥९॥

[1]वेदमें लिखा है कि—"जैसे मैं इस कल्याणी वाणीको सभी मनुष्योंके लिए अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, तथा शूद्र, अपना और पराया सबके लिए कहता हूँ, वैसे तुम भी सबको कहो। इससे मैं देवताओं और दक्षिणा देनेवाले यजमानका भी प्यारा बनूंगा। बस, मेरी यह कामना पूर्ण हो और यह फल मुझे प्राप्त हो।" यह मन्त्रद्रष्टा ऋषिकी उक्ति है जो भगवान्‌की वाणीका प्रचारक है। इस मन्त्रकी आज्ञासे मनुष्यमात्र वेदाध्ययनका अधिकारी है। यह दूसरी बात है कि शूद्र क्लिष्ट कार्यों या सेवा कार्योंमें रत होनेसे वेद न पढ़ सके। यदि वह पढ़ना चाहे तो

---

१ यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः। ब्रह्मराजन्याभ्यां शूद्राय चार्याय स्वाय चारणाय च। प्रियो देवानां दक्षिणायै दातुरिह भूयासम्। अयं मे कामः समृद्ध्यताम्। उपमाऽदो नमतु। यजु० २६।२।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपनीत होकर पढ़ सकता है। यही बात आगे और भी स्पष्ट की गयी है—

अथर्व वेदके 'स्तुता मया वरदा वेदमाता प्रचोदयन्ती पावमानी द्विजानाम्' इस मन्त्रमें 'द्विजानां पावमानी' द्विजोंको पवित्र करने वाली–लिखा है, जिससे द्विजोंको वेद पढ़नेका अधिकार कहा गया है। इसका तात्पर्य भी यही है कि वह वेदोंका अध्ययन करनेकी इच्छावाले मनुष्य मात्रको–पुरुषों और स्त्रियोंको द्विज बनानेकी भावनाका बोधक है, अर्थात् जो भी मनुष्य, पुरुष हो या स्त्री, वेद पढ़नेकी भावनासे गुरुके पास जाता है और उससे उपनीत होकर वेदाध्ययन करता है, वह द्विज है। उपनयनका अर्थ भी यही है कि गुरुके पास जाना और यज्ञका चिह्न 'यज्ञोपवीत' गुरुसे लेकर वेदाध्ययनमें प्रवृत्त होना, तब यह नियम तो मनुष्यमात्रके लिए लागू हो सकता है। मनुने भी इसी भावनाको पुष्ट किया है–'उपनीय तु यः शिष्यं वेदमध्यापयेद्द्विजः' (।२।१४०।) अर्थात् जो ब्राह्मण किसी आगन्तुक शिष्यको उपनीत करके कल्प और रहस्यके साथ वेद पढ़ाता है, वह 'आचार्य' कहा जाता जाता है। इसमें शिष्य मात्रको उपनयन देना स्पष्ट है। यदि वेद केवल उन्हीं द्विजोंके लिए होता जो जन्मसे त्रैवर्णिक हैं तो वे द्विज-पुत्र होनेसे पहले ही द्विज हैं, उनको पुनः द्विज बनानेकी भावनासे उपनीत करना तो पिष्ट-पेषण है; यदि "वे द्विज-पुत्र होते हुए भी जन्म से एकज हैं, अतः उन्हें उपनीत करके द्विज बनाना आवश्यक नहीं; ... ऐसा

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहा जाय तो शेष पुरुष भी तो एकज हैं, उन्हें क्यों न द्विज बनाया जाय ? केवल द्विजोंके पुत्रोंको एक-जसे द्वि-ज बनानां और शेप एकजोंको शूद्र मानकर उनको वेदाधिकार से वञ्चित रखना मानवताका अधिकार छीनना है। वास्तवमें उपनयन तो सार्थक तभी हो सकता है जब मानव-मात्रको द्विज बनाया जाय। ऐसा माननेसे द्विज सार्वभौम भी हो जाता है। अब उसे संकुचित सीमामें बन्द करना उचित नहीं।

वेदकी एक शाखामें भी पुरुषमात्र ही वेदाधिकारी माना गया है. 'विद्याह वै ब्राह्मणमाजगाम गोपाय मा शेवधिष्टेऽहमस्मि। असूयकायानृजवेऽयताय न मा ब्रूया वीर्यवती तथा स्याम्......यमेव विद्याः शुचिमप्रमत्तं मेधाविनं ब्रह्मचर्योपपन्नम्, यस्ते न द्रुह्येत् कतमच्चनाह तस्मै मा ब्रूया निधिपाय ब्रह्मन्।' इसमें कोई भी पुरुष विशिष्ट गुणोंसे युक्त हो तो उसे वेदाधिकार दिया जा सकता है।

भारते ये द्विजाः केचित्ते चेद्वेदाधिकारिणः।
अन्ये सर्वेऽपि भूमिष्ठा, शूद्रत्वाच्चेद्बहिष्कृताः ॥१०॥
तदा महान् पक्षपातः, परमात्मकृतो भवेत्।
तस्माद् द्विजत्व-संप्राप्त्यै सर्वे, स्युरधिकारिणः ॥११॥

यदि भारतमें रहनेवाले परिमित द्विजमात्र ही वेदाधिकार प्राप्त कर सकें और अन्य भूमण्डल-निवासी मनुष्यमात्र शूद्र मानकर वेदाधिकारसे बहिष्कृत कर दिये जायँ तो यह परमेश्वरकी समदृष्टिमें महान् पक्षपात होगा। क्योंकि उसने भूमण्डलके एक

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अरब अस्सी करोड़ मनुष्योंको अपने ज्ञानसे वंचित रखकर केवल नव या दस करोड़ व्यक्तियोंको ही अपने ज्ञानका अधिकारी बनाया! वस्तुतः परमेश्वरने तो ऐसा नहीं किया, उसके अदूर-दर्शी पुजारियोंने ही यह पक्षपात किया है। प्रभुकी वाणी वेदने तो स्पष्ट ही 'जनेभ्यः' कहा है, अर्थात् वह जनमात्रके लिए है, अतएव दूरदर्शी कण्व ऋषिने इस रहस्यको जानते हुए मिश्र देशके दश हजार यवनोंको संस्कृत पढ़ाकर यज्ञोपवीत दिया और द्विज बनाकर ईश्वरीय ज्ञान वेदको सबके लिए देनेका मार्ग ही खोल दिया[1]। अतः दूरदर्शी ब्राह्मणोंको शास्त्रसिद्धान्तानुसार भूमण्डलके सभी मानवोंको द्विज बनाकर अपनाना चाहियें।

तावन्मात्रो हि भेदःस्याद्, द्विजशूद्रविवेचने।
एकस्तु वेदाध्ययने, द्वितीयो वस्तुनिर्मितौ ॥१२॥
त्यागः शूद्रस्य मन्तव्यो, यो जनोपकृतीच्छया।
वेदपाठमनादाय, प्रवृत्तो जनसेवने ॥१३॥
वेदद्वारं तु सर्वेषां, कृते प्रोद्घाटितं सदा।
कश्चिज् ज्ञाने प्रवृत्तः स्यात्, कश्चित् स्यात् सेवने रतः ॥१४॥
ज्ञानकर्मफलं तुल्यं, द्वयोश्च द्विज-शूद्रयोः।
मोक्षेऽधिकारोपि समो, राष्ट्रेऽपि समवृत्तिता ॥१५॥

द्विजों और शूद्रोंका तो केवल इतना ही अन्तर है कि द्विजवर्ग वेदाध्ययनमें लगे और शूद्रवर्ग कला-कौशल कार्योंमें लगे रहने

१ भवि० प्र० ०. ख० ४, अ० २०, श्लो० ७५–७३। अ० २१ श्लो० १७

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के कारण वेद पढ़नेका अवसर प्राप्त न कर सके। इसे शूद्रका महान् त्याग समझना चाहिये कि वह जनोंके उपकारकी भावना से वेदपाठ छोड़कर मानव-सेवा एवं वस्तुनिर्माणके लिए अग्रसर हुआ है। किन्तु वेदको द्वार तो सदा सबकेलिए खुला ही है, चाहे कोई भी हो। यह और वात है कि स्वेच्छासे कोई ज्ञानमें, कोई सेवाकार्यमें और कोई वस्तु निर्माणमें प्रवृत्त हो; परन्तु ज्ञान और कर्मका फल द्विजों और शूद्रोंको एक समान ही मिलता है। इसके साथ ही राष्ट्रके सभी व्यवहार और मोक्षमें अधिकार आदि सब कुछ दोनोंको एक समान ही प्राप्त होता है। शूद्रके लिए जो यह लिखा है—'शुगस्य तदनादरश्रवणात् तदाद्रवणात्।' (वेदान्त १।३।३५) इसमें 'शुचा द्रवति' का तात्पर्य भी शूद्रके सेवा परायण होनेसे वेदके प्रति आदर कम होजाने के कारण वह स्वयं शोकसे व्याकुल होता है कि 'हाय! मैंने सेवा परायण होनेके कारण वेद का अनादर कर दिया!' परन्तु उसको फल और अधिकारकी समानताका ज्ञान हो जाने पर अपने कर्तव्यमें सन्तोष हो जाता है। अतः शूद्रकी निकृष्टताका वोधक दूसरा अर्थ प्रमाण नहीं हो सकता।

द्विज यदि वेदाध्ययनसे पवित्र है तो शूद्र सेवाकर्मसे, अतः सभी कार्योंमें दोनोंका समान अधिकार है। यह दूसरी बात है कि ब्राह्मणको ज्येष्ठ और श्रेष्ठ मानकर शेष द्विज और शूद्र भी उसकी पूजा करें या उसे महत्व दें। परन्तु ब्राह्मणको ऐसा न चाहिये कि वह किसीको निन्द्य समझे। जब कि वह समझता

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
है कि इन सबके बिना मैं भी अपूर्ण हूँ। अतः उसे तो मनुष्यमात्र के लिए समानताका अधिकार दे ही देना चाहिए और हृदय खोल कर कह देना चाहिए कि—'यथेमां वाचं कल्याणी मावदानि जनेभ्यः' अर्थात् मैं तो सबको वेदवाणीका अधिकार देता हूँ, पर उसकी योग्यता तुम प्राप्त करो।

गायन्तं त्रायते यस्माद्, गायत्री सा स्मृता बुधैः।
यस्तां गायति तत्त्राणं, कुरुते नात्र संशयः ॥१६॥
तस्मात् कश्चिज्जनोप्येतां, गायत्रीं चेज्जपेद् हृदा।
तस्य त्राणं स्वतः सिद्धं, जगतस्तारिका हि सा ॥१७॥

वेदमें गायत्रीको इसलिए गायत्-त्री कहा है कि इस छन्द-वाले मन्त्रको गानेवाले अर्थात् उच्चारण करनेवालेकी यह रक्षा करती है। इसलिये इस गायत्री या सावित्री मन्त्रको जो जितनी ही पवित्रता एवं तन्मयतासे पढ़ेगा उसे उतना ही लाभ होगा, उसकी रक्षा स्वतः सिद्ध है। परन्तु यह नहीं मोना जा सकता जो अशुद्ध अवस्थामें इसका उच्चारण करता है उसकी हानि होती है या उसका पढ़ना निष्फल हो जाता है, किन्तु उसे भी कुछ-न-कुछ फल अवश्य मिलता है। मैला वर्तन जब भी अग्निमें डाला जायगा तब वह निर्मल होकर ही निकलेगा। दूसरा 'मन्त्रोहीनः स्वरतो वर्णतो वा' अर्थात् स्वर वर्णोंकी हीनतामें जो कुफल वत-लाया गया है वह भी उसकी ठीक उच्चारण-रक्षाके उद्देश्यसे अर्थ-वाद मात्र है, परन्तु प्रभुके द्वारमें तो भावकी पूजा है, विद्वत्ताकी
CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तो वहां पूजा नहीं; वह यहां भले ही हो। भगवान् तो भावपर ही प्रसन्न होते हैं—वे तो हृदयतक पहुँचते हैं, मार्गमें वर्णोंतक रुक तो नहीं जाते। अतः स्वर-वर्णकी शुद्धिको ठीक मान लेनेपर भी, भूल हो जानेपर उसकी कुफल प्राप्तिके माननेमें हृदय रुकता है। इस लिए उत्तम भावनासे गायत्री मन्त्र उपनीत-अनुपनीत या शिक्षित-अशिक्षित सबको दे देना चाहिए, जिससे मानव मात्रकी बुद्धि सुधर जाय।

अग्निहोत्रं जुहुयाद् वै, स्वर्गकाम इति श्रुतिः।
स्वर्गकामः पुमान् ग्राह्यो, न द्विजोऽत्र नियन्त्रितः ॥१९॥
पुंस्त्वस्याप्यविवक्षास्ति, जातेस्तत्र प्रधानता।
तस्मात् स्त्रियः पुमांसश्च, सर्वे होमाधिकारिणः ॥२०॥

ग्रन्थोंमें लिखा है—'अग्निहोत्रं जुहुयात् स्वर्गकामः' अर्थात् स्वर्ग की इच्छावाला हवन करे। तो स्वर्ग-प्राप्तिकी इच्छा तो मनुष्य मात्रके अन्दर होती है, अतः मनुष्य मात्र हवनकर सकता है। वह केवल परिमित द्विजोंके लिए नियन्त्रित नहीं किया जा सकता। स्वर्गप्राप्तिकी इच्छाको भी केवल द्विजोंके लिए नियन्त्रित करना तो उपहासास्पद भी होगा। इसपर भी 'स्वर्गकामः' यह जो पुंलिंगका निर्देश है, उसकी यहां विवक्षा नहीं है और न उसपर बल ही है, क्योंकि वहां पुरुष जातिका ही ग्रहण अभीष्ट है, जिसमें पुरुष और स्त्री दोनों आ सकते हैं; इसलिए दोनोंको हवनाधिकार प्राप्त है, यही मानव धर्म है।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मीमांसा दर्शनमें भी इसी पक्षको पुष्ट किया गया है—'जातिंतु बादरायणः, तस्मात्स्त्र्यपिं प्रतीयेत, जात्यर्थस्याविशिष्टत्वात्। फलोत्साहाऽविशेषात् (६।१।८।९।) अर्थात् स्वर्गकामः इसमें केवल पुरुष नहीं लिया गया प्रत्युत पुरुष जाति ही ली गयी है। अतः स्त्री भी ली जा सकती है। क्योंकि जाति दोनोंमें एक-सी है। स्वर्ग प्राप्तिरूप फलोत्साह भी दोनोंके लिए एक सा है, इसलिए मानवमात्र—पुरुष और स्त्री को हवनाधिकार शास्त्रसिद्ध है।

पञ्च यज्ञाः समैः पुंभिः, कार्या कालुष्यशान्तये।
तैस्तु मानवमात्रस्य, कल्याणं जायते ध्रुवम् ॥२०॥
पुराणानीतिहासा वा, ये सुमार्गप्रदर्शकाः।
सर्वलोकानसौ मार्गः, प्रचालयितुमागतः ॥२१॥

ब्रह्मयज्ञ, देवयज्ञ, पितृयज्ञ, अतिथियज्ञ और भूतयज्ञ, ये पाँच महायज्ञ भी दैनिक पापोंके निवारणके लिए सभीको करने चाहिए, क्योंकि अपना कल्याण सबको अभीष्ट है। अतः शूद्र भी इन यज्ञोंको कर सकता है। याज्ञवल्क्यने भी इसकी पुष्टिकी है— (१ अ० १२०-१२१ श्लो०)

इसीप्रकार पुराण और इतिहास ग्रन्थोंमें एकादशी व्रत, सत्यनारायण व्रत, पुरश्चरणरूप चान्द्रायण व्रत और ब्रह्मज्ञान आदि जितने सुमार्ग बतलाये हैं वे सभी परमात्माके पास पहुंचानेके लिए ही हैं। अतः सबको व्रत आदि करने, मूर्तिपूजा या ब्रह्मज्ञान-प्राप्ति करनेका पूर्ण अधिकार है। कुछ विद्वानोंका

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मत है कि 'पुराण शूद्रोंके लिए ही बनाये गये हैं और द्विजोंके लिए ही वेद।' तब यह कहा जा सकता है कि इनको बने तो अधिकसे-अधिक पाँच सहस्र वर्ष बीते हैं, क्योंकि ये सब व्यासके ही बनाये हैं, परन्तु सृष्टिको बने तो दो अरब वर्षोंके लग-भग हो गये हैं, तब पहले वे कौन-से पुराण थे जिनको शूद्र पढ़ते थे? अतः ऐसी अमौलिक कल्पना न करना ही श्रेष्ठ है।

श्रीरामकृष्णबुद्धाद्या, येऽवतारा: समागताः।
तेऽपि साधुहितार्थाय, न द्विजेभ्यः समागताः ॥२२॥

श्रीराम, कृष्ण, महात्मा बुद्ध आदि जितने भी अवतार समय-समयपर हुए हैं—जिन्होंने कलुषित मार्गको विशुद्ध करना ही अपने अवतरणका उद्देश्य माना है, वे भी साधु मनुष्योंके हितके लिए ही आये हैं। केवल द्विजोंके लिए तो वे नहीं आये, यदि ऐसा होता तो कंस और रावण जैसे द्विजोंको तो न मारते। इधर प्रह्लाद राक्षस कुलमें होते हुए भी साधु था, उसकी रक्षाके लिए भगवान् नृसिंहरूप धारण करके आये। अतः इन अवतारोंके पूजनका अधिकार भी मनुष्यमात्रको है।

उपसंहार

यतो मानवमात्रस्य, धर्मो हितकरो मतः।
तस्मात्तदधिकारोऽपि मानवस्यैव सम्मतः ॥२३॥
तस्मात् सर्वे हि भूमिष्ठा, मानवा ये प्रकीर्तिताः।
ते च धर्मेऽपि वेदेऽपि, समत्वेनाधिकारिणः ॥ २४ ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यतः धर्म मनुष्यमात्रको सुख देनेवाला है, इसलिए उसे प्राप्त करनेका अधिकार भी मनुष्यमात्रको है। इसलिए जितने भी पृथ्वी पर मनुष्य हैं वे सभी वेदादि शास्त्रोंके पढ़ने, हवनकरने, पञ्च महायज्ञोंको सिद्ध करने, मूर्तिपूजा एवं अवतार-सत्कार करनेमें समानरूपसे अधिकारी हैं, क्योंकि मानव मस्तिष्क या अनुपुत्र होना सबके लिए एक-सा है।

इति मानव-धर्म-प्रकरणम् ॥४॥

अथ मानव शुद्धि प्रकरणम्

अथ शुद्धिं प्रवक्ष्यामि जनानामार्य्यवृद्धये।
यस्यां कृतायां कोऽपिस्यात्, सार्य्यतां प्राप्नुयाद् ध्रुवम्॥१॥
शुद्धिश्च द्विविधा प्रोक्ता शारीरी मानसी तथा।
शारीरी वारिमात्रेण मानसी ज्ञानकर्मतः ॥ २ ॥

इस प्रकरणमें सर्व साधारणकी शुद्धि व्यवस्थाके संबंधमें कहा जायगा जो विदेशी या विधर्मी आर्य्य-धर्ममें आना चाहें वे शुद्ध होकर आ सकते हैं, इसका उद्देश्य जहाँ मानवमात्रको शाश्वत कल्याणका सन्देश देना अभीष्ट है वहां आर्य्य जातिकी वृद्धि और आर्य्यशक्तिका संचय भी अभीष्ट है। इस शुद्धिके हो जाने पर कोई भी मानव आर्य्य वन सकता है तदनन्तर वह योग्यतानुसार वर्णविभागमें भी प्रविष्ट किया जा सकेगा। शुद्धि शारीरिक और मानसिक दो प्रकारकी है। जिसमें शारीरिक

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शुद्धि तो जलमात्रसे सम्पन्न हो जाती है। किन्तु मानसी शुद्धि पवित्र ज्ञान और दया दानादि सत्कर्मोंसे होती है। जिसका वर्णन आगे किया जाता है—

वेदाः विप्राश्च गावश्च गीता-ज्ञानाग्निवायवः।
गायत्रीजपदानानि सर्वे स्युः शुद्धिहेतवः ॥३॥
एषामभीष्टे सम्बन्धे स्वीकृते शुद्धचेतसा।
सर्वे वै शुद्धिमायान्ति, महामन्दा अपि ध्रुवम् ॥४॥
ज्ञानाद् दानात् प्रभुध्यानात् स्मरणात् सत्यधारणात्।
भावे शुद्धे समे शुद्धा भावोत्कृष्टा विधर्मिणः ॥५॥

(१) वेदोंका ज्ञान अथवा वेद पाठ, (२) ब्राह्मणोंकी सेवा, (३) गौका दान अथवा उसकी पूजा या रक्षाका व्रत, (४) गीताका ज्ञान, (५) होम, (६) प्राणायाम (७) गायत्री, जप और दान ये आठ उपाय शुद्धिका कारण माने गये हैं। आर्य्य धर्ममें प्रवेश चाहनेवाले व्यक्ति या व्यक्तिसमूहकी योग्यताके अनुसार इनमेंसे एक उपाय करनेपर—कोई भी क्यों न हो—निश्चय पूर्वक शुद्ध किया जा सकता है। उत्कृष्ट भाव और सदाचारी जीवन रखनेवाले उच्च विधर्मी तो ज्ञान, दान प्रभु-ध्यान, प्रभुस्मरण और सत्य आदि भाव शोधक विचारोंको दृढ़तापूर्वक धारण करनेसे भी पूर्णतया शुद्ध समझे जा सकते हैं—उनके लिये विशेष शुद्धि प्रकारकी कोई आवश्यकता नहीं, क्योंकि—

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आत्मा शुद्धः सदा ज्ञेयः सर्वेषामेव जन्मिनाम् ।
भाव शुद्धिस्तु सम्पाद्या ज्ञानदानैर्जपैस्तवैः ॥ ६ ॥
भावशुद्धौ तु जातायां दस्यवो राक्षसा अपि ।
यवनाश्च विजातीयाः सर्व आर्या हि सम्मताः ॥७॥

वेदान्तसिद्धान्तके अनुसार सभीका आत्मा तो शुद्ध है ही, हमने तो केवल उनका भाव ही बदलना है, वह स्वभाव परिवर्तन मुख्यतया ज्ञानसे ही हो जाता है। कहीं पर जप-प्रयोग अथवा प्रभुस्तुति या प्रार्थनासे अथवा पूर्वोक्त उपायोंमेंसे किसी एक उपायसे भी वह शुद्धि की जा सकती है; भावोंके आर्य-सिद्धान्तानुकूल शुद्ध हो जानेपर दस्यु और राक्षस आदि भी आर्य माने जा सकते हैं तो उत्कृष्ट भावोंवाले विधर्मी जनोंकी तो बात ही क्या ? क्योंकि मनुष्य सुभावोंसे ही उच्च बनता है और दुर्भावोंसे ही नीच। वाल्मीकिजीके भाव ही तो बदले थे जो दानवसे देव बने अथवा मानवसे मुनि। मनुने भी (१० । ४३ । ४४) में निम्न जातियोंको क्षत्रिय स्वीकृत किया है—जैसे—पौन्ड्र, ओड्र द्रविड़, काबुली पठान, यूनानी मुसलमान, शक, पारद, पल्हव, चीनी, मील्ल, दरद और खश (शेख) ये सब क्षत्रिय ही तो थे, जो ब्राह्मणोंके न मिलनेसे—मार्गदर्शकके न प्राप्त होनेसे आर्यकार्य प्रणालीको छोड़ बैठे। परन्तु अब हमें इन भूतपूर्व क्षत्रियोंको पुनः वर्तमान क्षत्रिय बनाकर अपनाना चाहिए। बस, इनके भाव मात्र ही बदलनेकी आवश्यकता है। अस्तु:—

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ते सर्वे मानवाः प्रोक्ता मनोर्जाता सहोदराः।
भावभ्रंशात् कुसंगाच्च प्रमादान्नीचतां गताः ॥८॥
तेषां भावो हि शोद्धव्यो ब्राह्मणैर्ज्ञानमार्गतः।
ते नीचा अप्यनीचाः स्युर्गोविप्रकुलरक्षकाः ॥९॥

ये भी तो मानव अर्थात्, मनुपुत्र हैं, इस मानवताके नाते तो हमारे सभी सहोदर भाई हैं, ये तो कुसंगतिमें आकर नीच भावोंवाले तथा प्रमादी बनते गए। अतः सभी ब्राह्मणोंका कर्तव्य है कि वे ज्ञान आदि उपायोंसे इनका भाव बदलते हुए उच्च विचार सम्पन्न और गो-ब्राह्मण-कुलरक्षक बना दें।[1]

दुर्लभं जन्म मानुष्यं महापुण्यैरवाप्यते।
तस्य शुद्धिः कथं न स्यात् दयापात्रमसौ जनः ॥१०॥
अङ्गीकारेण बन्धूनां ब्राह्मणानुग्रहेण च।
पूयन्ते तत्र पापिष्ठा महापातकिनोऽपि ये ॥११॥
कथासु साधुसङ्गेषु चोत्सवेषु मखेषु च।
सर्वसाधारणाः लोकाः प्रबोद्धव्या मनीषिभिः ॥१२।
आर्यजातेर्गुणा वाच्याः कर्मयोगफलानि च।
भुक्तिर्मुक्तिः प्रभोर्भक्तिः शान्तिमार्गस्तथैव च ॥१३।

---

१ मानव शुद्धिके उपाय दूसरे शुद्धिकारोंने भी प्रकाशित किये हैं, जैसे—मनु० ५।१०५ ।, ११ । २४५ ।, याज्ञ० ३।३० विष्णु० २।४।, [illegible]

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनुष्य योनिमें जन्म लेना दुर्लभ है, यह जन्म तो पूर्व पुण्यों के प्रभावसे ही प्राप्त होता है, फिर यदि वह पापी होकर पापसे छूटना चाहता हो, नीचे जाकर ऊपर आना चाहता हो, तो उनकी शुद्धि क्यों न हो, वह तो दयाका पात्र है, उसे उपेक्षाका पात्र क्यों वनाया जाय ? दूसरा— जब उदार विचार वाले सम्बन्धी उन पतितोंको अङ्गीकार करलें, साथ ही उनपर दयालु ब्राह्मणोंका अनुग्रह भी हो जाय तो चाहे वे कितने भी पापी क्यों न हों—पवित्र माने जा सकते हैं। अतः विद्वानोंको चाहिए कि वे सर्व साधारणको अपनी कथाओं, उत्सवों, सत्सङ्गों और यज्ञोंमें निमन्त्रित करें, उन्हें आर्यशास्त्रका रहस्य समझावें, आर्यजातिके गुण-कर्मयोगफल-सुख-दुख-भोगके कारण, मुक्तिके रहस्य, प्रभुभक्तिके मार्ग और शान्तिमय जीवन-प्राप्तिके उपाय आदि समझावें, जिससे विश्व-शान्ति स्थिर हो सके।

ईश्वरोऽपि हि नीचानामुद्धाराय सदोद्यतः।
तद् भक्ताः ब्राह्मणाः ये स्युः कथं नोद्धारका हि ते ॥१४॥
ईश्वरोऽपि प्रियस्तेषां ये तदा देशधारकाः।
ये तु नीचानुपेक्षन्ते हीश्वरस्तदुपेक्षकः ॥१५॥

ईश्वर भी जब नीचोंके उद्धारके लिए सदा उद्यत रहता है और आदेश करता है कि 'अपिचेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक् साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग् व्यवसितो हि सः।' अर्थात् चाहे कोई

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कितना ही दुराचारी क्यों न हो, यदि वह अनन्य भावसे मेरी शरणमें आ जाता है और मुझपर विश्वास रखकर सुकर्म करने लगता है तो उसे साधु ही समझना चाहिए, क्योंकि वह भलाई की ओर प्रवृत्त हो गया है। इस प्रकारका व्यक्ति शीघ्र ही धर्मात्मा बनजाता है और उसे पूर्ण शान्ति प्राप्त हो जाती है"। ऐसे दयालु प्रभुके भक्त जो ब्राह्मण हों वे क्योंकर प्रभुकी तरह उद्धारक न हों, उन्हें तो उद्धारक होना ही चाहिए। सच तो यह है कि प्रभु भी उन्हें ही प्यार करते हैं जो उनके आदेश पर चलते हैं, किन्तु जो प्रभुकी इच्छाके विरुद्ध होकर नीचोंकी उपेक्षा करते हैं, अपनी उच्चताके घमण्डमें चूर रहते हैं, अपने सुखोंमें उन्मत्त होकर उनके दुःखोंका अनुभव ही नहीं करते,ऐसे घमण्डियोंकी तो ईश्वर भी उपेक्षा करते हैं। अतः हे ब्राह्मण वर्ग ! हे साधु समुदाय ! हे गोस्वामी वृन्द ! हे मठाधीश मण्डल ! आप उन पतित जातियोंका उद्धार करो और प्रतिकूल जातियोंके आर्य विरोधी विचारोंको हटाकर उन्हें आर्य भक्त बनाओ, उनके दुर्भावोंको सद्भावोंमें परिवर्तितकर उन्हें आर्यजातिमें सम्मिलित करो। आप ईश्वरके ऐसे श्रेष्ठ भक्त बनो कि ये सभी आप ही तक पहुँचकर पवित्र हो जायँ, भगवान् तक इनको जानेकी आवश्यकता ही न रहे।

तस्मान्मानवजातीया दयादृष्ट्या विलोकिताः।
शोधयित्वा स्वकाः कार्या आर्यजाति-विवृद्धये ॥१६॥

इसलिए सबको मानव—मनुवंशज—स्वभ्राता समझते हुए, उसपर दयादृष्टि रखते हुए आप उन्हें शुद्धकरके अपना बनाएँ

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिससे आर्यजाति एवं आर्यशक्तिकी वृद्धि हो। यदि सच कहा जाय तो ठीक यही है--यदि भारतीय आर्यमात्र, इन विधर्मियोंसे प्यार करना, इनके अन्दर आर्यजातिके संस्कार डालना—बलपूर्वक नहीं—प्रेम पूर्वक इन्हें अपनाना आरम्भ कर दें तो कुछ वर्षोंमें ही देशका कायापलट हो जाय। अतः इसके लिए सभी ब्राह्मणोंको सर्वदा तैयार रहना चाहिए।

इति मानव शुद्धि प्रकरणम्।

श्रीमध्व सम्प्रदायवादी वैष्णवोंके 'हरिभक्ति-विलास' नामक ग्रन्थमें तो यहां तक लिखा है कि--

यथारसविधानेन कांस्यं याति सुवर्णताम्।
तथा दीक्षाविधानेन द्विजत्वं जायते नृणाम्॥१॥
न मे भक्तश्चतुर्वेदी मद्भक्तः श्वपचप्रियः।
तस्मै देयं ततो ग्राह्यं स च पूज्यो यथा ह्यहम्॥२॥

"अर्थात् भगवान् स्वयम् कहते हैं कि जैसे कांसा, रसक्रियाके द्वारा सोना बनाया जाता है वैसे ही मनुष्य मात्र दीक्षा-शिक्षाके द्वारा द्विज बनाए जा सकते हैं। यह आवश्यक नहीं कि चतुर्वेदी विद्वान् ही मेरा भक्त बननेका अधिकारी है। मेरी भक्तिका अधिकारी तो चाण्डाल भी है। उससे लेना और उसे देना दोनों काम उत्तम हैं उसे मेरे ही समान प्यार करो। जैसे अपने भक्तकी दृष्टिमें मैं पूज्य हूं वैसेही उसे भी पूज्य मानो।"

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसकी घृणा और तिरस्कार तो कहां रहा। अब तो भगवान् के इन उदार विचारों पर चलनेका समय उपस्थित हो गया है।

—०—

अथ शूद्र शुद्धि मीमांसा प्रकरणम्

अस्पृश्यं कर्म संप्रोक्तं, जन्मास्पृश्यं न शास्त्रतः।
तदभ्युपगमे तावन्मीमांसेयं प्रवर्तते ॥१॥

संसारमें निकृष्ट पदार्थ ही अस्पृश्य माने गए हैं, अतः उनके स्पर्शमें आनेवाले कर्म भी अस्पृश्य हैं। इसीलिए उन कर्मोंके करने तक पुरुष भी अस्पृश्य माना गया है, परन्तु जन्मसे तो कोई भी व्यक्ति या समाज अस्पृश्य नहीं माना जा सकता। क्योंकि वेद शास्त्रमें "सुजाता सो जनुषा"—अर्थात् (मानवरूप मरुतोंके अर्थमें) जन्मसे सभी पवित्र है—सभी सुजात हैं—ऐसा माना गया है।' अतः अस्पृश्य कर्मकारी चाहे शूद्र हो या कोई दूसरा व्यक्ति वह उतने ही काल तक अस्पृश्य माना जाता है जब तक वह उसमें संलग्न है। परन्तु, स्नान आदिसे शुद्ध हो जानेपर वह पूर्णतया शुद्ध है, अतः 'मानव शुद्धि प्रकरण'की शुद्धि इसके लिए अपेक्षित नहीं। फिर भी यदि कुछ विद्वान् उसे अस्पृश्य मानते हों तो उन्हें यह प्रकरण पढ़ना चाहिए। इसमें इसी विषय की मीमांसा [जांच] की गयी है।

शरीरशुद्धिर्निश्शङ्कमिह लोके सुखप्रदा।
परलोकोपलब्धौ तु जीवशुद्धिर्विशिष्यते ॥२॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जीवश्चेत् शुद्धतां यातो मुक्तिस्तस्य ध्रुवा स्मृता।
शरीरं केवलं शुद्धं परलोके न सौख्यदम् ॥३॥

मनुष्य मात्रकी शरीरशुद्धि आवश्यक है—उत्तम है, सुख और स्वास्थ्य देनेवाली है—यह ठीक है, परन्तु शरीर-शुद्धिका फल केवल इस लोक तक ही सीमित है, क्योंकि शरीरका संबंध ही इसी लोक तक है, परलोकमें सुख प्राप्ति या मोक्ष प्राप्तिमें तो जीवशुद्धि ही अपेक्षित होती है। यदि जीवात्माका जीवन शुद्ध है तो उसकी मुक्ति निश्चित ही है, चाहे वह शूद्र हो या द्विज। किन्तु केवल शरीर-शुद्धिसे, केवल बाहरकी छुआ-छूतसे—कभी किसीका परलोक नहीं सुधर सकता; क्योंकि शरीर-शुद्धिका फल शरीर-स्थिति तक ही सीमित है।

चेद् बाह्यशुद्धिः प्रभवेत् परलोकस्य साधिका।
तदा शूद्रस्य न क्वापि परलोके सुखं भवेत् ॥४॥
परं तस्यापि मोक्षोऽसौ तुल्यः सिद्ध्यति कर्मतः।
तदा कथं द्विजो बाह्यशुद्ध्या मोक्षस्य साधकः ? ॥५॥
यत्तूभयविधा शुद्धिः सम्भवेन्मुक्तिकारणम्।
तदापि तस्य मुक्तिस्तु निकृष्टा स्यान्न वा भवेत् ॥६॥
वस्तुतो जनमात्रस्य मुक्तिः कर्मगता वरा।
न कश्चिद् बाह्यशुद्ध्यैव पारत्र्ये मोक्षमाप्नुयात् ॥७॥

यदि किसीकी बाहरकी शुद्धि ही परलोकमें मोक्ष देनेवाली होती तो शूद्र बेचारेको तो कभी परलोक सुख प्राप्त हो ही न

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सकता, क्योंकि उसमें बाहरकी शुद्धि अपेक्षाकृत न्यून है, परन्तु उसकी भी परलोक-सिद्धि शुभ कर्मानुसार द्विजोंके बराबर ही होती है। श्रीकृष्ण भगवान्‌ने गीतामें स्पष्ट कहा है कि 'स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धिं लभते नरः' अर्थात् अपने-अपने कर्मोंमें लगे हुए—पवित्रता पूर्वक जीवन निर्वाह करते हुए—सभी जन–चाहे द्विज हों या शूद्र, परम सिद्धि (मुक्ति) को प्राप्त कर सकते हैं। तब द्विजको ही यह हठ क्यों हो रहा है कि वह बाहरकी शुद्धिको ही मुक्तिका साधन समझ बैठा है। यदि इसलिए हठ है कि जीवनकी शुद्धि और बाहरकी शुद्धि भी दोनों मुक्तिके लिए अपेक्षित हैं तो शूद्रके पास तो दोनों शुद्धियाँ पूर्णतया हैं नहीं; केवल जीवन शुद्धि ही उसमें है। अतः यदि उसे मुक्ति मिलेगी तो निकृष्ट कोटिकी, अथवा मिलेगी ही नहीं, क्योंकि उसमें द्विजकी तरह दोनों शुद्धियाँ पूर्ण नहीं हैं, परन्तु फल तो उसे भी द्विजोंके समान ही मिलता है। क्योंकि मुक्तिमें बाहरकी शुद्धि किञ्चित् मात्र भी अपेक्षित नहीं होती। वह तो कर्मानुसार मनुष्यमात्रको समान रूपसे ही मिलती है। मुक्ति तो आत्माकी है, शरीरकी तो है नहीं, फिर उसके लिए बाह्य शुद्धिका क्या मूल्य। अतः कोई भी द्विज हो या द्विजोत्तम, गोस्वामी हो या महन्त, साधु हो या सन्त, वह बाह्य शुद्धिके बलबूते पर—छुआछूतके आधारपर मोक्ष नहीं प्राप्त कर सकता। प्रत्युत उसके द्वारा तो रुद्ररूपशूद्र-स्पर्श-घृणाजन्य एक पाप हो रहा है जो उसकी मोक्षप्राप्तिमें बाधक भी हो सकता है। इस सन्दर्भसे

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह निर्णय निकलता है कि ब्राह्मण और शूद्र दोनों उत्तम कर्म करते हुए मुक्ति प्राप्त कर सकते हैं, किन्तु शूद्रसे घृणा करता हुआ बाहरकी शुद्धिको ही सब कुछ समझता हुआ द्विज कभी मुक्ति प्राप्त नहीं कर सकता।

ये बाह्यशुद्धये शूद्रान् निन्दति स्पर्शनेऽपि च।
अदूरदर्शिनस्ते स्युः स्वभ्रातुरपमानतः ॥८॥
अस्पृश्यं कर्म संप्रोक्तं जन्मतस्तु समे समाः।
अस्पृश्यकर्मणा तावद् द्विजोप्यस्पृश्यतां व्रजेत् ॥९॥
शुद्धौ सत्यां तु ते सर्वे पुनःस्पृश्या भवन्ति चेत्।
तदा शूद्रोऽपि शुद्धः सन् कथं न स्पृश्यतां व्रजेत् ॥१०॥
चेन्निरन्तरमस्पृश्यकर्मकारणतोऽधमाः।
तथाप्यस्पृश्यता देहपर्यन्तं सा त्ववस्थिता ॥११॥
नैरन्तर्यवशात्तेषामणवो यदि चाऽधमाः।
तदा मलस्य सातत्यादन्तःस्थानाद् वयं तथा ॥१२॥
तस्मात् सर्वे समा ज्ञेया अस्पृश्या नीचकर्मणा।
तस्मात्तु कर्मणो मुक्ताः शुद्धौ सत्यां समे समाः।१३।

जो लोग बाहरकी शुद्धिको सम्मुख रखकर केवल अछूतके छूने मात्रसे ही उसे कोसते हैं या अपनेको अपवित्र समझते हैं, चाहे वह पवित्र होकर भी क्यों न आया हो, तो ऐसे व्यक्तियोंको अदूरदर्शी समझना चाहिए। क्योंकि वे इतना भी नहीं समझते कि हम आज अपने भाईका अपमान कर रहे हैं और यह भी

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं सोचते कि वह हमसे तिरस्कृत होकर विधर्मियोंमें जा मिलेगा। इस प्रकार हमें एकके बदले अनेकोंकी क्षति उठानी पड़ती है, विधर्मी बनकर सन्तान द्वारा फलता-फूलता तो वह सहस्रों विधर्मियोंको उत्पन्न करता है। हम यह तो सहन करनेके लिये तैयार नहीं हैं कि कोई शूद्र विधर्मी बन जाय। पर यदि वह हममें आना चाहे तो हम उसे आने नहीं देते, यदि विधर्ममें जाना चाहे तो उसे जाने भी नहीं देते, तब वह शूद्र कहाँ जाय ? कब तक त्रिशंकुकी तरह वह बीचमें लटकता रहेगा। यह दशा उसकी सदाके लिए नहीं रह सकेगी, या तो उसे हम अपनेमें मिलायें, अन्यथा आज नहीं तो कल वह अवश्य विधर्मी हो जायगा। अन्ततः वह भी मानव है, वह इस विषमाधिकारको क्योंकर सहन करता रहेगा और कब तक रुका रहेगा ? क्यों न वह विधर्मियोंमें मिलकर समानताका अधिकार प्राप्त कर ले। अतएव हमें अदूरदर्शी न बनकर अतिदूरदर्शी बनना चाहिये। देशको विभक्त करनेमें हमारी यह अदूरदर्शिता ही प्रधान कारण बनी है। सच तो यह है कि शास्त्रानुसार कर्म ही अस्पृश्य है, जन्मसे तो सभी समान हैं, कोई जन्मसे अस्पृश्य होकर नहीं आता। अस्पृश्य कर्मसे तो द्विज भी अस्पृश्य हो जाते हैं, यदि शुद्ध हो जानेपर वे स्पृश्य हो सकते हैं तब शूद्र भी शुद्ध होकर क्यों न द्विजकी तरह स्पृश्य हो सके। यदि यह कहा जाय कि प्रतिदिन अछूत कर्म करनेसे वे शूद्र नीच, अधम, अस्पृश्य माने गए हैं तो

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी अस्पृश्यताका संबन्ध तो उनके शरीर तक ही सीमित है, जो कि शरीरको सम्यक् स्वच्छ करनेपर वह अछूतपनका भूत दूर किया जा सकता है। मनुके सिद्धान्तानुसार '*अद्भिर्गात्राणि शुद्धयन्ति*' शरीर तो पानीसे ही शुद्ध हो सकता है। तब भी यदि कोई यह तर्क करे कि निरन्तर गन्दा काम करनेसे उनके शरीर-गत परमाणु ही दूषित हो गये हैं; वे किसी प्रकारसे भी शुद्ध नहीं किये जा सकते तब हमारे उदरमें भी तो निरन्तर-जीवन पर्यन्त मलमूत्र आदि अस्पृश्य पदार्थ पड़े ही रहते हैं, अतः हम भी क्यों न अस्पृश्य एवं अधम माने जायँ। उनके शरीरको तो बाहरसे ही मलस्पर्श करता है। परतु हमारे तो भीतर ही मल जमा रहता है, उसके परमाणु तो अन्दर-बाहर सर्वत्र फैल जायेंगे। अतः ऐसी क्लिष्ट एवं निर्मूल कल्पना कदापि नहीं करनी चाहिये। अस्पृश्यताका दोष सबमें—द्विज और शूद्रमें समान रूपसे मानना चाहिये। जब भी वे कर्म-मुक्त होकर, स्नान और वस्त्रों से शुद्ध होकर समाजमें आयें तो उन सबको पूर्ण समानता देनी चाहिये।

शास्त्रे भेदोऽसवर्णानां सवर्णेभ्यो य आहृतः।
नाऽसौ वेदोदितोमार्गो यतो वेदे समे समाः ॥१४॥

धर्मशास्त्रोंमें जो सवर्ण आर्योंसे शूद्रोंको असवर्ण अतएव अनार्य घोषित करके उन्हें आर्योचित अधिकारोंसे वंचित कर दिया गया है वह भेद-भाव चाहे मनु आदि मुख्य-स्मृतिकारों द्वारा स्वीकृत हो, चाहे प्राचीन ब्राह्मण ग्रन्थों द्वारा ही प्रति पादित

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
हो, वह वेदोक्त मार्ग नहीं है। वेदमें उनके मानवोचित अधिकारों पर कहीं भी कुठाराघात नहीं किया गया। उसमें चारों वर्णोंमें कर्तव्य भेद भले ही हो, परन्तु द्विजोंके अधिकारसे या मानवोचित सम्मानसे उन्हें कहीं भी वंचित नहीं रखा गया, प्रत्युत वहां तो इतनी नैसर्गिक समानता पायी जाती है कि उसे देखते ही बनता है। जब मरुतोंका आधिभौतिक 'मनुष्यरूपा वा मरुतः' इति अर्थमें प्रजा संबंधी अर्थ किया है वहां यह स्पष्टतया लिख दिया है[1] कोई बड़ा होकर भी अपनेको बड़ा न कहे और न दूसरेको छोटा, यहां तक कि कोई किसीको मध्यम श्रेणीका भी न समझे, सभी उन्नतिशील होकर अपनी सत्यताकी महत्तासे आगे बढ़ें—उन्नति करें। उन्नतिका क्षेत्र सबके लिये खुला है। कर्मक्षेत्र भूलोकमें सबको उन्नति करनेका अवसर है, दूसरा—'सुजातासो जनुषा' जन्मसे सभी सुजात हैं, सभी पवित्र हैं, सभी 'पृश्निमातरः' हैं, सबकी एक ही प्रकृति-माता है, सबका शरीर निर्माण एक ही प्रकृति से हुआ है। अतएव सभी 'दिवोमर्याः' हैं, स्वर्गीय मनुष्य हैं, अर्थात् बाल्यावस्थामें सभी प्राकृतिक रूपसे दिव्य विचारोंवाले होते हैं, तब उनमें कोई पारस्परिक वैषम्य नहीं होता। सभी एक दूसरेके हाथका खाते हैं, परन्तु ज्यों-ज्यों बड़े होते जाते हैं, त्यों-त्यों

---

१ ते अज्येष्ठा अकनिष्ठास उद्भिदो ऽमध्यमासो महसा विवावृधुः। सुजातासो जनुषा पृश्निमातरो दिवोमर्या आ नो अच्छा जिगातन। (५।५९।६. ऋग्वेद)

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक दूसरेसे घृणा करने लग जाते हैं, पर जन्मसे अवश्य सभी (दिवोमर्या) है—इसमें कोई सन्देह नहीं। वे सब भली भाँति गतिशील अर्थात् उन्नतिशील हों। इस मन्त्रमें मरुतों या प्रजाजनोंका कितना अच्छा प्राकृतिक जीवन वर्णित है, दूसरे वेदमें, समानतापर और भी अधिक बल दिया गया है[1] ? हे प्रजा जनो ! तुम्हारी पीनेकी जलशाला एक हो, तुम्हारा भोजन परस्पर मिलकर हो, मैं तुम्हें एक ही प्रेमबंधनमें बाँधता हूं, तुम जब हवन करने बैठो तो अग्निके चारों ओर उसे घेर कर बैठो, जैसे चक्रकी नाभिके चारों ओर 'अर' लगे रहते हैं। तब छोटे-बड़ेका भाव स्वयं ही मिट जाता है। इतना सुन्दर अभेद तो वेदमें मिलता हो, विराट्रूप प्रभुके चारों अङ्गोंके संयुक्त होनेपर अभेद हो, फिर भी स्मृतिकारों द्वारा भेद करना—शूद्रोंको द्विजोंसे विच्छिन्न कर देना—कितना असङ्गत प्रतीत होता है। वेदमें एक भक्त प्रार्थना करता है[2] कि 'हे प्रभो मेरा प्रेम ब्राह्मणों, क्षत्रियों, वैश्यों और शूद्रोंमें एक-सा हो' यहां कोई सवर्ण-असवर्णका भेद नहीं। अतः इस अमौलिक और अवैदिक भेदको समाप्त करदेनेमें ही राष्ट्रका मंगल है। अब तो 'मानव्योहि एताः प्रजाः सर्वाः' का राज्य हो। अर्थात् समग्र प्रजा ही मनुकी सन्तान है।

---

१ समानी प्रपा सह वोऽन्नभागः समाने योक्त्रे सहवो युनज्मि। सम्यञ्चोऽग्निं सपर्यत अरा नाभिमिवाभितः। ३।३०।६। अथर्व०

२ रुचं नो धेहि ब्राह्मणेषु, रुचं राजसु न स्कृधि। रुचं विश्वेषु शूद्रेषु मयि धेहि रुचा रुचम्। यजु० १८।४८

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शूद्र जातिके बिना आर्य जाति अपूर्ण है

अस्पृश्यकर्मणा चेत्ते सर्वदा स्युर्बहिष्कृताः ।
तदा जातिरपूर्णा स्यात् जात्यन्तरप्रतीक्षया ॥१५॥
यस्या जातेर्वस्तुदाता शोधकः सह नो वसेत् ।
सोऽन्यजातौ प्रविष्टः स्यात् स्वकीयस्तिष्ठतां कुतः॥१६॥

यदि अस्पृश्य कर्मके करनेसे उन्हें सदाके लिये पृथक् कर कर दिया जाय, जैसा कि किया गया है, तब तो आर्यजाति अपूर्ण सिद्ध होगी। क्योंकि इसकी सभी आवश्यकताओंको पूरा करने वाला इनका अपना कोई नहीं, यदि हो तो वह इनके साथ बैठ नहीं सकता। तब इन द्विजोंको निकृष्ट, किन्तु आवश्यक और अत्यावश्यक कार्योंको पूरा करने के लिये दूसरी जातिका मुँह ताकना पड़ेगा। जैसे कि अब भी ताक रहे हैं। यही कारण है कि हमने स्वयं ही विधर्मियोंको बुलाया और अपनी जातिको बलात् विधर्मी बननेका अवसर दिया, जिस जातिकी आवश्यकतायें तो हों, किन्तु उन्हें पूरा करनेवाला वस्तुदाता, और वस्तुशोधक हमारे साथ न बैठ सके, तब तो वह हमारी घृणाका पात्र बना हुआ आज नहीं तो कल अवश्य अन्य जातिमें मिल जायगा। जब हम उसे अपना न बनायें तो वह क्योंकर और कब तक अपना बना रहेगा। अतः शोधक और वस्तुदाताको समानताका अधिकार देना ही होगा।

हमारी मनोवृत्ति तो इतनी गिर गयी है कि हम तेलसे तो प्यार करें पर तेल निकालनेवालेसे करें घृणा। दूध तो हमें मिल-

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
जाय, पर दूध दुहनेवाला ग्वाला निकृष्ट ! क्षौर कराना आवश्यक है किन्तु नापितसे प्यार नहीं । भूषण तो अभीष्ट, परन्तु सुवर्णकार निकृष्ट । रथ तो हमें चाहिए, पर रथ चलानेवाला सूत ! और उसे बनानेवाला रथकार शूद्र ! घोड़ेके लिये घास तो अन्दर आजाय, परन्तु घास लानेवाला घसियारा अस्पृश्य । मांस तो खानेको मिल जाय, पर माँस तैयार करनेवाला वधिक निकृष्ट । पानीको शीतल रखनेके लिए कुम्भ तो चाहिये, पर कुम्भकार निकृष्ट । वस्त्रोंका रंगा जाना तो सौभाग्यका चिह्न हो, पर रजक अन्त्यावसायी । कपड़ा मैला करनेवाला द्विज उत्कृष्ट, पर उसे पुनः उज्वल करके लानेवाला धोबी निकृष्ट ! जूतेकी आवश्यकता तो सबको हो लेकिन उसे बनानेवाला चमार छिः, छिः । रहनेको तो मकान चाहिये, पर उसे तैयार करनेवाले कारीगर-बढ़ई आदि अछूत ! वस्त्रके बिना तो काम ही न चले, पर वस्त्रकार-जुलाहेसे घृणा !

इस आर्य जातिकी अनुचित घृणाको कहाँ तक गिनाया जाय ? इसी घृणासे तो विधर्मियोंकी संख्या सौगुनी नहीं सहस्रों गुनी बढ़ गयी और हमारी उतनी ही घट गयी । किन्तु अब हमें सावधान होकर रहना चाहिये, जितना वस्तुसे प्यार हो, उतना ही वस्तु बनाने वालेसे भी हो । यदि आंखे खोलकर चारों ओर देखें तो सभी वस्तुएं शूद्रकी ही देन हैं, इनके बिना तो हम पङ्गु हैं । अतः इनसे निष्कपट होकर समानताका व्यवहार करना चाहिये ।

पादोऽपि शुद्ध उत्सङ्गमाप्नोति स्पर्शमर्हति ।
गुरोः पादस्त्वशुद्धोऽपि सर्वैः स्पृश्यो न दोषदः ॥१७॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गंगा तु पादतो जाता स्यात् शुद्धिफलदायिनी ।
शूद्रो यः पाद जातोऽस्ति सोऽस्पृश्यः कुत उद्गतः ॥१८॥
यः पादः कर्दमेऽमेध्ये गत्वा देहं सुरक्षति ।
स कृतज्ञैः कथं निन्द्यः सर्वाधारो हि सः स्मृतः ॥१९॥

जब कि पैर भी शुद्ध होकर उत्सङ्गमें बैठ सकता है और हाथोंसे निस्सकोच छुआ भी जाता है, गुरूजीका पैर तो अशुद्ध होते हुए भी सभी शिष्योंके छूनेमें कोई दोष नहीं माना जाता। तब शूद्रके शुद्ध होकर आनेपर उसके स्पर्शमें क्यों दोष माना जाय ? यदि यह कहा जाय कि वह विष्णुके चरणोंसे जन्म लेनेके कारण अन्त्यज और नीच है, तो गंगा भी तो विष्णुके चरणसे ही निकली है। वह चरणोंसे निकली होनेपर न केवल शुद्ध ही समझी जाती है, प्रत्युत दूसरे अशुद्धोंको भी शुद्ध करने-वाली मानी जाती है। परन्तु उसी विष्णुपदसे निकला हुआ शूद्र (गंगाका भाई) सदाके लिए अशुद्ध रहनेवाला कैसे हो गया !* भला, जो पाँव अपवित्र कीचड़से लथपथ होकर भी देह-को पवित्र रखता है, स्वयं कष्ट उठाकर दूसरेको सुखी करता है हम उसे निन्दनीय या नीच क्यों समझें। वही तो समग्र शरीरका

---

* भगवान् बालमुकुन्दने तो "करारविन्देन पदारविन्दं मुखारविन्दे विनिवेशयन्तं" करते हुए ब्राह्मण और शूद्रके अभेदवादको स्पष्ट प्रकट कर दिया हो, और हम उसके विपरीत आचरण करें, यह हम वैष्णवोंको शोभा नहीं देता।

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आधार है, उसे एक स्थानसे दूसरे स्थान तक पहुँचनेवाला भी वही है, तब उससे घृणा करना घोर अन्याय है।

गृहस्याधारभूताश्चेद् इष्टकाः स्युः पृथक् कृताः।
तदा गृहं पतेत्सद्य आधारस्यापकर्षणात् ॥२०॥
वृक्षः खे मोदते योऽसौ तत्र मूलं हि कारणम्।
यन्मृदा कर्दमैः पृक्तं न तन्निन्द्यं कदाचन ॥२१॥
तथा शूद्रो निकृष्टानि कर्माणि कृतवानपि।
परोपकारकर्तृत्वात् शुद्धः सन् साम्यमर्हति ॥२२।

यदि किसी घर की नींवकी ईंटें उस घरसे पृथक् करदी जायँ तो वह घर शीघ्र ही गिर जायगा, क्योंकि उसका आधार ही न रह जायगा। ठीक आज यही दशा हमारी जातिकी हो रही है। हमने जातिके आधार-भूत शूद्र जातिको अपनी जातिसे पृथक् कर दिया है। अतः हमारा जाति रूपी घर भी पतनासन्न (डँवाडोल) हो गया है, जिसका प्रथम प्रमाण 'पाकिस्तान' है। वृक्ष जो आकाशमें झूमता-हुआ दिखाई दे रहा है, उसकी रक्षाका कारण उसका मूल ही तो है जो स्वयं कीचड़ और मिट्टीसे सना रहकर अपनेको तो मिटा रहा है, परन्तु वृक्षको लहरा रहा है, वह मूल कभी निन्दनीय नहीं हो सकता और न उसकी उपेक्षा करनेसे वृक्षकी स्थिरता ही रह सकती है, जड़े हिलीं कि वृक्ष गिरा। ऐसे ही निकृष्ट कार्यों-को करता हुआ शूद्र भी परोपकारी होनेसे निन्दा, उपेक्षा या घृणासे पृथक् करनेके योग्य नहीं है; प्रत्युत शुद्ध हो जानेपर वह द्विजोंके समान ही है।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वृषल शब्दका असंगत प्रयोग

वृषं त्वलं प्रकुर्वाणाः सर्वे वै वृपला मताः ।
शूद्रोऽपि वृषपालश्चेन् नाऽसौ तु वृषलो मतः ॥२३॥
धर्मेण यो व्यवहरेत् परलोके च विश्वसेत् ।
कथं स शूद्रो वृषलः स त्वार्यः सम्प्रधार्यताम् ॥२४॥
गुणद्वयमिदं तावद् आर्यत्वाप्त्यै परं मतम् ।
यस्मिंस्तु जनमात्रेऽपि द्वयं स्यात् आर्य एव सः ॥२५॥

मध्यम कालीन प्राचीन शास्त्रों में शूद्रके लिये जो 'वृषल' संज्ञा निर्धारित की गयी है वह उनके प्रति अन्याय हुआ है, क्योंकि जो-जो वृष(धर्म) को अलं करे—समाप्त करे—अर्थात् जो धर्मका नाश करे, चाहे वह द्विज हो या शूद्र सवही 'वृषल' कहे जा सकते हैं। इसके विपरीत जो शूद्र होकर भी यदि धर्मकी रक्षा करता हो — वृषपाल वना हुआ हो, वह तो कभी 'वृषल' नहीं कहा जा सकता। जो शूद्र होकर भी धर्मपूर्वक व्यवहार करे, और परलोक पर भी विश्वास रखे वह 'वृषल' क्यों माना जाय? उसे तो आर्य ही मानना चाहिए। प्रत्युत धर्मविरुद्ध आचरण करनेवाले द्विजोंको ही 'वृषल' कहना चाहिए। मनुने भी इसी पक्षकी पुष्टिकी है। [1]"वृष-नाम धर्म का है जो भी उसका नाश करे विद्वान् उसे ही वृषल कहते हैं, इसलिए धर्मका कोई नाश न करे" इसमें शूद्रका कोई नाम नहीं आया। मानवमात्रके आर्य होनेकेलिये केवल दो ही

१—देखिये, मनु० अ० ८ श्लो० १६।

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुण पर्याप्त हैं—१—धर्मपूर्वक व्यवहार करना, २—परलोकपर विश्वास। ये दो गुण जिसमें भीमिलें उसे निस्सन्देह आर्य मानना चाहिये। संसारमें यह घोषणा की जाय कि जो धर्मपूर्वक व्यवहार और परलोक पर विश्वस रखने वाला होगा, वह 'आर्य' ही माना जायगा।

शूद्रा नीचा न मन्तव्या नीचकर्मविधानतः।
ते नीचा निश्चिता नीचं जीवनं धारयन्ति ये ॥२६॥
महाक्लेशान् प्रसह्यापि जात्युपकृतिवांच्छया।
यदर्पयति स्वं जीवं स शूद्रो धार्मिको महान् ॥२७॥
वेदशास्त्रमनादाय परोपकृतिवांछया।
जीवनं सेवने दद्यात् स शूद्रः सेवको महान् ॥२८॥
अहो मया जातिसेवा-कर्मणि स्वं वयो हुतम्!
इत्थं द्रवति शोकेन स शूद्रो भावुको महान् ॥२९॥
इमां सेवां प्रकुर्वाणः शूद्रो नीचः कथं मतः?
स तु सर्वैः महात्यागी पुण्यात्मा संप्रधार्यताम् ॥३०॥

जीविकाके लिये नीचकर्म करनेके कारण शूद्रको नीच न मानना चाहिये। वास्तवमें नीच तो वही समझा जाय जो जीवनमें नीच और बाहरसे उच्च तथा महानुभाव प्रतीत होता हो—जो लेन-देनमें, आचार-व्यवहारमें नीचताका परिचय दे चोरवा-जारको प्रचलित रखे—वास्तवमें नीच तो वही है। किन्तु जो जातिकी सेवा करनेकी भावनासे बड़े-बड़े कष्टोंको सहता

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुआ भी जातिकी सेवाको लक्ष्यमें रखकर उसकी आवश्यकताओंको पूर्ण करता हुआ अपना सम्पूर्ण (देव दुर्लभ मानव) जीवन जातिको अर्पण कर दे, उसे तो महान् पुण्यात्मा ही समझना चाहिये। जो मस्तिष्कधारी होकर भी, वेदशास्त्रका ज्ञान रखने योग्य होता हुआ भी, केवल परोपकार बुद्धिसे वेदोंको न पढ़कर, समग्र जीवन सेवामें दे दे, उसे तो महान् सेवक ही समझना चाहिये। जिसे केवल इसी बात पर शोक हो कि हाय ! मैंने जाति-सेवामें अपनी समग्र आयु स्वाहा कर दी, परन्तु आत्मसुधारक वेदज्ञान प्राप्त न किया, इसी शोकसे जो व्याकुल हो रहा हो, उसे तो महान् भावुक ही समझना चाहिये। ऐसा सेवा करता हुआ शूद्र नीच कैसे माना जा सकता है ? इसलिये उसे तो नीच न मानकर महान् त्यागी और पुण्यात्मा ही निर्धारित करना चाहिये। यहां 'शुचा द्रवति' का तात्पर्य परोपकारमें लगा रहनेके कारण आध्यात्मिक जीवन प्राप्त न कर सकनेके शोकसे व्याकुल रहता है। यही वास्तिविक अर्थ है।

नीचैर्भावो न नीचः स्यात् पापकारी तु नीचकः।
औत्तराधर्यभावस्तु वस्तुनिर्माणहेतुतः ॥३१॥

जो सज्जन शरीरके नीचेके भाग पाँवके तुल्य अस्पृश्य काम करनेसे शूद्रको नीच मानते हैं, यह भी उनसे भारी भूल हुई है। वास्तवमें वह तो नीचैर्भाग है, जिसका अर्थ—नीचेका हिस्सा, होता है, नीचेका हिस्सा नीच तो नहीं माना जा सकता, यहां नीचैः (नीचे) को नीच समझना शब्द सादृश्य मूलक प्रमाद हुआ

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। नीचैः (नीचे) खड़ा हुआ कोई वड़ा व्यक्ति नीच नहीं हो जाता। यदि ऐसा होता तो वृक्षकी ऊँची शाखापर बैठा हुआ कौवा उच्च बन जाता और नीचेकी शाखापर बैठा हुआ हंस नीच; परन्तु ऐसा होता नहीं। वस्तुतः पापकारी ही नीच माना जाता है। नीचैर्भागोत्पन्न होनेसे कोई नीच नहीं माना जा सकता। एवं अन्त्यज शब्द भी अन्तिम वर्णसे उत्पन्न होनेके कारण अन्त्यज अर्थका बोध कराता है। किन्तु इससे वह नीच नहीं हो जाता है। सम्वत २००५में पाँचका अंक अन्तिम होनेसे क्या नीच बन गया? एवं वस्तुके निर्माणमें भी कोई भाग ऊपर, कोई नीचे, कोई पहले, कोई अन्तमें, यह तो वस्तु निर्माणका एक प्रकार है, जैसे घर बननेमें किसी ईंटका ऊपर आना, किसीका नीचे, इस प्रकार उन ईंटोंमें ऊँच-नीचका भाव नहीं आता। अतः उच्चैः, नीचैः, अग्रजः, अन्तिमः, उत्तरः, अवरः, इत्यादि शब्द वस्तु-निर्माणमें स्थानानुकूल प्रयुक्त होते हैं। इनके आधारपर कहीं अवर शब्दको देखकर उसे नीच समझना भारी भूल है।

उपसंहार

तस्मात् शुद्धस्तु शूद्रोऽपि द्विजवत् साम्यमर्हति।
विद्यालये मन्दिरे च यात्रायां भोजनादिषु ॥३२॥
मनुष्योऽसौ मनोर्जातः सत्यो भ्राता सदा मतः।
स शूद्रः कथमस्पृश्यो जन्मना मन्यतां बुधैः ॥३३॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.
इसलिए जब शूद्र अपने सेवाकर्मसे निवृत्त हो, स्नान वस्त्र-

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परिवर्तनादि द्वारा शुद्ध होकर सामाजिक कार्योंमें, जैसे विद्यालय, मंदिर, तीर्थयात्रा आदि सहयोगी कार्योंमें आए तो उसे द्विजके समान अधिकार देना चाहिये। अन्ततः वह भी तो मनुष्य है। हमारी तरह वह भी मनुकी सन्तान है, अतः वह सचमुच हमारा भाई है। उसे जन्मसे ही सदाके लिए अस्पृश्य कैसे माना जाय ?

उपसंहारका फल

पूजा-पाठो जपो-होमस्तिलकं सूत्रधारणम् ।
तत्सर्वं निष्फलं ज्ञेयं यदि शूद्राद् घृणा कृता ॥३४॥

सच तो यह है कि जो शूद्र गौ-ब्राह्मणकी सेवा करनेवाला, श्रमजीवी, धर्म विश्वासी, ईश्वरसे भय रखनेवाला, परलोकपर विश्वास रखकर मानवमात्रका हितकारी हो, ऐसे शूद्रसे यदि हमने किसी प्रकारकी घृणा की, या उसे "शूद्रोऽसि, वृषलोऽसि, गच्छ इतःस्थानात्" तू शूद्र है, वृषल है, यहाँसे हट जा आदि शब्दोंसे तिरस्कृत कर दिया तो हमारी प्रभुपूजा, वेदादि शास्त्रोंका पाठ, गायत्री आदि मन्त्रोंका जप, नित्यका अग्निहोत्र अथवा तिलक, माला, यज्ञोपवीत आदि आर्य चिह्नोंका धारण सब निष्फल हो जायगा। क्योंकि इस प्रकार ईश्वरभक्त, परोपकारी अपने भाईसे अथवा निषाद पुञ्जिष्ठ रूपधारी साक्षात् रुद्रसे घृणा करके हम अक्षम्य अपराध करते हैं।

ओड्रा मेधा मातमा वा संस्यो भिल्लाश्च नायराः ।
नमश्शूद्रा ढेढ़ चूडा मेतरा लाल वेगिनः ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चर्मकाराः कुम्भकाराः खटिका डोम कर्पलाः ।
कोरा सवारी महली वेदियाश्च वहेलिया ॥
अगर्या लौनिया वौरी वोरिया भातियास्तथा ।
गडावा वाथुरी वेरो गोंड खर्वार थारवः ॥
भुइया वेल्दार भ्वीमाली, विञ्छिया, विन्द भूमिजाः ।
मुण्डाः नागा लुशाइया होम् कोरवा मालरियास्तथा ॥
ओराव सन्ताल खोड खर्यार विहार विर्जिया ।
पासी वर्वार हावूरा हाजङ्गाः कञ्जरादयः (मानवधर्मसारसे)

भूयांशः शूद्रवर्णेऽस्मिन् भारते विश्रुतिं गताः ।
सर्वे आर्या हि मन्तव्या न ते दूष्या कदाचन ॥३५॥
तेषां स्पर्शे भोजनेऽपि न घृणा धार्यतां क्वचित् ।
यतस्ते धार्मिकाः सर्वे गोविप्रकुलरक्षकाः ॥ ३६ ॥
सर्वे विचारबुद्ध्या ते विराडंगानि सम्मताः ।
स्वीकार्याः प्रेमभावेन जातिशक्तिर्यथैधताम् ॥ ३७ ॥
राजनैतिकदृष्ट्यापि समाः कार्याः समे जनाः ।
वैषम्याधारतस्तेषां पृथक् स्थाने स्थितिर्भवेत् ॥ ३८ ॥
तस्मादुदारभावेन प्रभुरूपा हि सम्मताः ।
सर्वे शूद्राः स्वकाः कार्याः पूजापाठादिकर्मणि ॥३९॥

ओड, मेघ, मातम, सन्सी, भील, नायर, नमःशूद्र, डेढ, चूड़, मेहतर, लालवेगी, चमार, कुम्हार, खटिक, डोम, कर्पल, कोर, सवार, महली, वेदिया, वहैलिया, अगरिया, लौनिया, वौरी,

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चोरिया, भातिया, गड़ावा, वाथुरी, वेर, गोंड, खरवार, थारू, भुंइया, वेलदार, भुइमाली, विञ्झिया, विन्दभूमिज, मुण्ड, नाग, लुपाई, आहोम, कोख, मालरिया, ओराव, सन्तरल, खोड, खिरिया, विरहार, विंजया, पासी, वरवार, हावूर, हाजंग अर कंजर आदि वहुत भेद हैं जो इस भारतवर्षमें शूद्र वर्णमें प्रसिद्ध हैं, ये सव वास्तवमें आर्य वंशज हैं, इन्हें कभो दूषित न समझना चाहिये, इनके स्पर्शसे तो क्या किसी भी प्रकार से घृणा न करनी चाहिए। क्योंकि ये सभी धर्मात्मा हैं, गौ और ब्राह्मण कुलकी रक्षा करनेवाले हैं। यदि विचार वुद्धिसे देखा जाय तो ये सभी विराट् रुद्रके रूप ही हैं। अतः इनको प्रेम भावसे अपनाओ—अपनोंमें ही गिनो—अपना ही समझो, जिससे आर्यजातिकी शक्ति वढ़ती चले। एक वात और—राजनैतिक दृष्टिसेभी हमें इन सवको समानताका अधिकार देना चाहिये। यदि कोई विषमता रखी गयी तो जन गणना या मत दानमें ये हमसे प्रृथक् हो जाएंगे। इसलिये विषमताको शक्ति नाशक और समताको शक्ति वर्धक समझते हुए साथ ही इनको प्रभु रूप मानते हुए इन्हें सर्वथा अपनाना चाहिये।

इति शूद्र-शुद्धि-मीमांसा प्रकरणम्

—०:ॐ:०—

अथाऽस्पृश्य-स्पृश्य-मीमांसाप्रकरणम्।

अस्पृश्यकर्मकरणादस्पृश्यश्चेत्प्रजायते।
कर्ममुक्तो जनः शुद्धो अस्पृश्यो नैव मन्यताम् ॥१॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तथापि चेदशुद्धोऽसौ मन्यते दोषदर्शिभिः ।
तदा शुद्धजनस्पर्शप्रभावात् स्पृश्यतां व्रजेत् ॥२॥
अस्पृश्यस्यप्रभावश्चेत् मन्यतेऽदूरदर्शिभिः ।
जपपूतप्रभावोऽपि मन्यतां दूरदर्शिभिः ॥३॥

अतएव—

अस्पृश्यजनसंस्पर्शाद् गौरस्पृश्या न चेद् भवेत् ।
अपि तु स्पर्शकः स्पृश्यो गोभक्तेऽपि तथोच्यताम् ॥४॥

जो व्यक्ति अस्पृश्य पदार्थोंके छुए जानेके कारण यदि अशुद्ध हो गया है तो उस कर्मके समाप्त हो जानेपर स्नानसे शुद्ध होकर और वस्त्र आदि बदलकर समाजमें आ जाय तो उसे अस्पृश्य कदापि न समझना चाहिए। यह शास्त्रकारोंका सिद्धान्त है। तथापि यदि कोई दोषदर्शी व्यक्ति, शुद्ध होकर आनेपर भी उसे अशुद्ध माने तो शुद्ध जनोंके स्पर्शमें आनेसे उस स्पर्शके प्रभावसे भी वह शुद्ध हो जायगा, यदि कुछ अदूरदर्शी जनोंकी दृष्टिमें अस्पृश्यके स्पर्शका कुछ प्रभाव माना गया है कि वह स्पृश्यको भी अस्पृश्य कर दे तो दूरदर्शी जनोंकी दृष्टिमें जप-पूत व्यक्तियोंकी भी कोई प्रबल शक्ति है जो अपने स्पर्शसे अस्पृश्यको भी स्पृश्य कर दे। परन्तु ऐसा नहीं माना जा सकता कि अस्पृश्यका तो प्रभाव बना रहे, पर जप-पाठका कोई प्रभाव न हो, न्याय तो यह है कि 'अश्रेष्ठ श्रेष्ठयोर्मध्ये श्रेष्ठो गरीयान्' अर्थात् "अश्रेष्ठ और श्रेष्ठमें श्रेष्ठकी शक्ति प्रबल होती है" अतः उसीका ही माहा-

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
त्स्य मानना चाहिये। अतएव इस प्रकरणका नाम अस्पृश्यस्पृश्य मीमांसा रखा गया है। इसमें "अस्पृस्य भी स्पृश्य बन जाता हैं"—इस विषयकी मीमांसा की जायगी।

जब कि स्पृश्य जनके स्पर्शसे गौ अस्पृश्य नहीं हो जाती प्रत्युत अस्पृश्य ही उसके स्पर्शके प्रभावसे स्पृश्य हो जाता है। मनु भी 'गामालभ्यार्कमीक्ष्य च' अर्थात् गौका स्पर्शकर और सूर्यको देखकर भी अस्थिके स्पर्शसे अस्पृश्य हुआ पुरुष शुद्ध हो जाता है—इस भावको स्वीकार करते है, वही भाव गो-भक्तमें भी लेना चाहिये। उसके स्पर्शसे भी दूसरा अस्पृश्य स्पृश्य हो जाता है।

मन्दिरं च तदा पूतं मन्तव्यं शास्त्रवेदिभिः।
यदा तत्स्पर्शमासाद्यास्पृश्योऽपि स्पृश्यतां व्रजेत् ॥८॥
अतस्तस्मिन्प्रवेशोऽपि तेषामेव सहेतुकः।
उच्चाः स्वभावतः शुद्धाः तेषां नास्ति प्रयोजनम् ॥९॥

शास्त्र-वेत्ता विद्वानोंके द्वारा मन्दिर तभी पवित्र माना जा सकता है जब कि उसके स्पर्शमें आकर अर्थात् भगवान्का दर्शन-पूजन करके अछूत भी छूत हो जाय, किन्तु यदि अछूतके आजानेसे मन्दिर ही अछूत मान लिया जाय तो अछूतकी महिमा बढ़ी, तब मन्दिरका तो कुछ महत्व नहीं रहा। किन्तु ऐसा होता नहीं। सत्य तो यह है कि पतितपावन प्रभुके दर्शन मात्रसे ही अपवित्र भी पवित्र हो जाता है। अतः मन्दिरमें छूअतोंका आना ही सप्रयोजन सिद्ध होता है। त्रैवर्णिकोंका

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मन्दिरमें जाना तो कोई प्रयोजन नहीं रखता। पतितपावन प्रभुके पास उच्च जातिवालोंका क्या काम? वे तो पहले ही पवित्र हैं।

अस्पृश्य नालीसंपर्कात् गंगाऽस्पृश्या न चेद् भवेत्।
प्रभुभक्तेऽपि सा शक्तिः जप-पूतेऽपि सा मता ॥७॥
प्रभुभक्तस्तु शूद्रोऽपि पवित्रो विप्रवन्मतः।
तस्माद् घृणां यः कुरुते पापभाग् मन्यतां हि सः ॥८॥

जबकि गन्दी नालीके गंगामें मिलनेपर गंगा अपवित्र नहीं होती, अपितु नालीका पानी ही गंगा रूप हो जाता है, यही शक्ति प्रभु-भक्त या जप-पूतमें भी है, वह भी अपने स्पर्शसे दूसरोंको शुद्ध करदे। प्रभु भक्त तो शूद्र भी ब्राह्मणके समान पवित्र माना जाना चाहिये। उससे घृणा करने वालेको पापी समझना चाहिये।

अस्पृश्यांगुलिसंस्पर्शात् घटोऽस्पृश्यो भवेद्यदि।
गोभक्तांगुलिसंस्पर्शात् तदा स्पृश्योऽपि सम्भवेत् ॥९॥
गोभक्तस्यापि माहात्म्यं निश्चयेन प्रकथ्यते।
यत्करस्पर्शतोऽस्पृश्यःस्पृश्यः स्यादिति मन्मतम् ॥१०॥

यदि किसी अछूतकी अंगुलीके स्पर्शसे घड़ा अपवित्र हो गया हो तो वह गोभक्त, प्रभुभक्त अथवा जप-पूत महात्माकी अंगुलीके स्पर्शसे पवित्र भी किया जा सकता है। हमारी सम्मतिमें तो कोई गो-भक्त आर्य किसी अनार्यसे परस्पर हस्तसंमेलन करे तो उस गोभक्तके प्रभावसे दूसरा अस्पृश्य भी स्पृश्य माना जा

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सकता है—उस पवित्रात्माकी विद्युत शक्तिसे अस्पृश्य ही प्रभावित हो सकता है।

ताम्रं सुवर्णसांगत्यात् चेत्सुवर्णायते सदा।
दुग्धेन सह सम्पर्काज्जलं दुग्धायते यदि ॥११॥
यदि चन्दनसंयोगात् वृक्षोऽन्यश्चन्दनायते।
तर्ह्यार्यजनसंसर्गात् नीचोप्यार्यत्वमाप्नुयात् ॥१२॥

सोनेकी संगतिमें आकर ताँवा यदि सोने-सी शोभा प्राप्त कर लेता है, यदि दूधमें पड़ा हुआ पानी दूधका रंग भी प्राप्त करता है और मूल्य भी, एवं चन्दनके सम्पर्कमें आकर दूसरे वृक्ष भी चन्दनकी गन्ध धारण कर लेते हैं तो आर्य जनकी सङ्गतिमें आया हुआ, अनार्य भी आर्योंके गुण धारण करता हुआ, आर्य हो सकता है। अतः श्रेष्ठकी संगतिका प्रभाव ही दूसरों पर पड़ता है। *

---

* इस पक्षकी पुष्टि एक विद्वान्ने बहुत युक्तियुक्त ढंगसेकी है—
सत्संगाद् भवति हि साधुता खलानां साधूनां नहि खलसंगमात् खलत्वम्।
आमोदं कुसुमभवं मृदेव धत्ते मृद्गन्धं नहि कुसुमानि धारयन्ति।—
अर्थात् सत्संगतिसे नीच उच्च हो जाते हैं परन्तु उच्च कभी नीच नहीं होते, उच्चका अर्थ भी यही है जो सुघरा हुआ परिपक्व संस्कारोंवाला हो जिसपर दूसरेका कोई निकृष्ट प्रभाव न पड़ सके। जैसे मिट्टी तो फूलकी सुगन्धको धारण कर लेता है, परन्तु फूल मिट्टी के गन्धको धारण करले ऐसा कभी नहीं देखा गया। एवं आर्योंकी श्रेष्ठताका प्रभाव दूसरोपर पड़ सकता है, न कि दूसरोंका आर्योंपर।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रेष्ठस्य श्रेष्ठता तावद् गीयते जगतीतले।
अश्रेष्ठः श्रेष्ठसंगत्या यदा श्रेष्ठः प्रजायते ॥१३॥
श्रेष्ठा गौरपि गायत्री गीता श्रेष्ठा च सम्मता।
तत्संगे चागते सर्वे श्रेष्ठाःकस्मान्न सन्तु ते ॥१४॥
तस्मान् मन्दिर-गायत्री-गीता-गोविन्द-पूजनम्।
तत्सर्वं सर्वदा शुद्धं शोधयेदखिलान् जनान् ॥१५॥

इस संसारमें श्रेष्ठकी श्रेष्ठता तो तभी मानी जा सकती है जबकि उसकी संगतिमें आकर नीच भी श्रेष्ठ बन जाय। गौ, गायत्री, गीता, गंगा और गोविन्द श्रेष्ठ माने गये हैं तो इनके सम्पर्कमें या इनकी पूजामें आए हुए जन क्यों न श्रेष्ठ बन सकेंगे। इनके पुजारी बने हुए अनार्य भी आर्य हो सकते हैं। इसलिये मन्दिर, गायत्री, गीता, गौ और गोविन्द ये सभी सदा शुद्ध रहने वाले हैं। कभी अशुद्ध होते ही नहीं। प्रत्युत अपने संम्पर्कमें आने वाले दूसरोंको भी शुद्ध कर देते हैं। इसलिये—

यवना अपि गोभक्ता गीताभक्तास्तथैव च,
कर्तव्याः प्रेमभावेन राष्ट्रे शक्तिर्यथैधताम् ॥१६॥

हमें तो यवनों, ईसाइयों, पारसियों और यहूदियोंको गो-भक्त, गायत्री-भक्त, गीता और गोविन्द-भक्त बनाना चाहिये जिससे राष्ट्रशक्ति केन्द्रित होकर समृद्ध बन सके।

अस्पृश्यस्पर्शनाद्यावान् दोषो वै मन्यते जनैः।
तस्माद् घृणा विधानात्तु स सहस्रगुणो भवेत् ॥१७॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तस्माद् द्विजैःकृपां कृत्वा तानुद्धर्तुं समुद्यतैः ।
स्वपुण्यं तेषु नीत्वापि स्वीकार्या मानवा हि ते ॥१८॥

साधारण जन अस्पृश्यके स्पर्शसे जितना दोष समझते हैं उनको यह ज्ञान नहीं कि उनसे घृणा करने या उनका तिरस्कार करनेसे वह दोष सहस्रगुणा हो जाता है, क्योंकि उन्होंने विराट् रूप भगावन्का तिरस्कार किया है; इसलिये क्या ही उत्तम हो कि सभी द्विज विशेषकरके द्विजोत्तम वर्ग उनका उद्धार करनेके लिए बद्धपरिकर हो जायँ, उनपर यहाँ तक कृपा करें कि उन्हें अपना पुण्य देकर भी उन्हें पुण्यात्मा बनाकर अपना लें; किन्तु उनका तिरस्कार कभी न करे। अन्ततः ये भी तो हम जैसे ही मानव हैं, "हम भी मानव ये भी मानव" इतना सादृश्य तो हमारे सामने आना ही चाहिये।

इत्यस्पृश्यास्पृश्यमीमांसाप्रकरणम्

—:o:—

अथ भक्ष्याभक्ष्यमीमांसा प्रकरणम्

किं भक्ष्यं किमभक्ष्यं च, प्रश्नेऽस्मिन् समुपस्थिते ।
पूर्वं भक्ष्यं चिन्तयामि, येन सौख्यं भवेदिह ॥ १ ॥

आर्यशास्त्रोंमें भक्ष्याभक्ष्यका पर्याप्त विवेचन है, वहां इस विषयपर इस प्रकार प्रकाश डाला गया है कि जहां भोजनका प्रभाव शरीरपर पड़ता है, वहां इसके सूक्ष्म भागका प्रभाव मनपर भी पड़ता है। अतः इस विषयपर पूरा प्रकाश डालना

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चाहिये। पहला प्रश्न यहां यह उपस्थित होता है कि भक्ष्य पदार्थ क्या है ? और अभक्ष्य क्या है ? इसके उत्तरमें प्रथम भक्ष्य पदार्थोंका ही विवेचन किया जाता है, जिससे जीवन सुखमय और स्वास्थ्यसम्पन्न हो सके।

सर्व साधारण भक्ष्य

अन्नं सर्वविधं भक्ष्यं शाकं सर्वविधं तथा।
फलं सर्वविधं चापि भक्ष्यं स्याद् भूमिजन्मतः ॥२॥

साधारण रूपमें मनुष्य स्वभावतः शाकभोजी है, अतः उसके लिये सभीप्रकारका अन्न, शाक और फल सेवन करना उचित है। क्योंकि उक्त सभी पदार्थ भूमिज हैं। ऋषि-मुनि भी कन्द, मूल, फल और शाक सम्बन्धी आहार करते थे। इनमें प्याज और लहसुनको अत्युष्ण एवं उत्तेजक मानकर कोई न खाये तो ठीक ही है, परन्तु यह दूषित पदार्थ नहीं; इनमें भी वैद्यक शास्त्रोक्त बहुतसे गुण हैं, अतएव लहसुन अमृत जन्मा भी कहा गया है। एवं मसूरका सेवन भी निषिद्ध नहीं है। वेदमें लिखा है— 'मसूराश्चमे' अर्थात् मसूर या मसूरकी दाल भी मेरी वस्तु है। कोई अभक्ष्य पदार्थ नहीं।

भक्ष्य और सात्विक अन्न

भिक्षान्नं सात्विकं प्रोक्तं यज्ञशिष्टञ्च सात्विकम्।
शुद्धावृत्या सेवया वा श्रमेणान्नञ्च सात्विकम् ॥३॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ईदृशं भोजनं यस्मात् प्राप्तं स्याद् भोज्यमेव तत् ।
इह लोकेऽपि सुखदं पर लोकेऽपि मोक्षदम् ॥४॥

भिक्षामें मिला हुआ अन्न, यज्ञसे बचा हुआ प्रसाद, शुद्ध जीविका, सेवा और परिश्रमसे प्राप्त किया हुआ अन्न या भोजन सात्विक भी है और भक्ष्य भी। ऐसा भोजन जहाँसे भी मिले खा लेना चाहिये। इससे लोक और परलोक दोनोंमें कल्याण प्राप्त होता है।

बाह्य और अभ्यन्तर शुद्धि

स्वेदाद्यमेध्यरहितं शुद्धवारिभिरंचितम् ।
पवित्रपात्रे वै राद्धं पवित्रैः सज्जितं जनैः ॥५॥
पवित्रवृत्त्याऽपि प्राप्तं, चेत्तदा भक्ष्यमेव तत् ।
तत्सेवनेन चारोग्यं मेधावृद्धिश्च जायते ॥६॥

जो भोजन पसीना, मल आदि अपवित्र वस्तुओंके सम्पर्कसे बचाकर तैयार किया गया हो, पाचकोंको ग्रीष्म ऋतुमें स्वेदसे और दोनों ऋतुओंमें मलिन पदार्थोंसे भोजनको बचाकर बनानेका पूरा आदेश हो, उसमें जलका प्रयोग जहां शुद्धि पूर्वक हो वहां वह निर्गन्ध और निर्मल भी हो, उसमें शकादिको पकानेवाले पाचक जन भी स्वयं पूर्ण पवित्र हों, इसमें पात्र भी पवित्र हों इसके साथ वह भोजन पवित्र जीविकासे भी प्राप्त हो तो वह भोजन सर्वगुण-सम्पन्न होनेसे भक्ष्य भी है और सात्विक भी। इस प्रकारका

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भोजन करनेसे आरोग्य और मेधा दोनोंकी वृद्धि होती है। किन्तु जो अन्न पूर्वोक्त पवित्रतासे निर्मित होनेपर भी यदि अपवित्र जीविका द्वारा प्राप्त है तो वह अन्न सात्विक न होकर राजस हो जाता है। यदि वह पवित्र जीविकासे प्राप्त होनेपर बाहरी पवित्रतासे न्यून भी होता है तो अल्प सात्विक समझा जाता है। ऐसे अन्नसे परलोक तो नहीं बिगड़ता परन्तु आरोग्यमें वह बाधक हो सकता है। यदि दोनों प्रकारकी पवित्रतासे रहित हो अथवा उपेक्षित हो तो वह तामस भोजन समझा जाता है। ऐसा भोजन तो स्वास्थ्य और परलोक दोनोंका नाश करता है।

शूद्रका निर्माणाधिकार

शूद्रेण संस्कृतं चान्नं यदि शुद्धया सुसज्जितम्।
धर्मवृत्त्यापि चाऽप्तं स्यात् तद्भक्ष्यं सात्विकं हि तत्॥७॥

जो अन्न शुद्धिपूर्वक और धर्मपूर्वक प्राप्त किया गया हो तो वह शूद्रके हाथसे निर्मित होनेपर भी द्विजोंके लिये भक्ष्य है, साधु-महात्माओं और गोस्वामी महन्तोंके लिये भी एवं वैष्णवों और शैवोंके लिये भी वह भक्ष्य ही है। किसी प्रकारसे दूषित नहीं माना गया। आपस्तम्ब धर्मसूत्रमें ऐसा ही प्रमाण मिलता है। *

जिनके हाथका खानेमें कोई दोष नहीं, उनके साथ खानेमें

---

* आर्याधिष्ठिता वा शूद्राः संस्कर्तारः स्युः २।२।४। अर्थात् आर्यों द्वारा नि[illegible]त किये हुए शूद्र भोजन [illegible] हों।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्या दोष ? भोजनके विषयमें हमारा पहला ध्येय तो उस अन्नकी पवित्र जीविकापर हो, और दूसरा उसकी बाहरी पवित्रतापर। पर निर्माताकी जातिपर अधिक ध्यान न हो। अतएव महाभारत कालमें कसाई तकके घरमें उत्तम द्विज तक उसके हाथका पाद्य और आचमनीय लेते थे।[१] इसी प्रकारका वर्णन बाल्मीकि रामायणमें भी आया है।[२] आपस्तम्ब धर्मसूत्रमें तो एक प्रकरण ही इसी विषयका आया है—वहां प्रश्न किया गया है—'*क आश्याचः ?*' किसके हाथका खाना चाहिये ? उत्तर—'*य ईप्सेत् इति कण्वः*'। जो खिलाना चाहे उसके हाथका खा लेना चाहिये। यह कण्व ऋषिका मत है। इसपर कौत्स ऋषि कहते हैं '*पुण्य इति कौत्सः*' जो भी पुण्यात्मा हो, जिसकी जीविका पवित्र हो चाहे वह ब्राह्मण हो या शूद्र उसके हाथका खा लेना चाहिये! तीसरे 'वार्ष्यायणि' ऋषि तो निस्संकोच शब्दोंमें उत्तर देते हैं--'*यः कश्चिद् दद्यात्*' अर्थात् जो भी दे दे, उसके हाथका खा लेना चाहिये। अतएव खाने-पीनेमें कोई धार्मिक बन्धन नहीं। आगे और भी स्पष्ट किया गया है कि '*सर्वतोपेतं वार्ष्यायणीयम्*' '*यतः कुतश्चाभ्युद्यतं भोक्तव्यम्*' अर्थात् वार्ष्यायणिका यह मत है कि सत्कार और प्रेम पूर्वक जहाँसे भी मिल जाय खा लेना चाहिये। यह प्रकरण आप० ध० १।६।१९। में २ सूत्रसे ११ सूत्रों तक चला जाता है।

---

१ प्रविश्य च गृहं रम्यमासनेनाभिपूजितः पाद्यमाचमनीयं च प्रतिगृह्य द्विजोत्तमः' म. भा. व. प. २०६ अ. १८ श्लो०।

२. वा. रां. अ. का. ७४ अ. ७ श्लो.।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दूसरा १।६।११। में १३।१४ सूत्र संख्यामें स्पष्ट कहा है—'*सर्व वर्णानां स्वधर्मे वर्तमानानां भोक्तव्यं शूद्रवर्जं, तस्यापि धर्मोपगतस्य* (भोक्तव्यम्)' अर्थात् धर्मपूर्वक जीवन-निर्वाह करनेवाले सभी वर्णोंके हाथका खाना चाहिये, चाहे वह शूद्र भी हो। इसलिये किसी खिलानेवालेकी पवित्र जीविकापर तो ध्यान हो, किन्तु उसकी जातिका ध्यान न हो। मनुने भी पक्वान्नके सम्बन्धमें अति उदार विचार दिये हैं।[1]

अर्थात् समिधा, जल, फल, अन्न आदि सब ओरसे लेने चाहियें, अकस्मात् दी हुई भिक्षा तो पापीसे भी ली जा सकती है।

वेदमें भी भक्ष्य अन्नका वर्णन मिलता है[1]। जिसने तीनवस्तुओं (मन, वाणी और शरीर) से अन्नको पवित्र कर लिया है और जिसने उसी पवित्र अन्नसे बने हृदयसे अपनी बुद्धिको और बुद्धि द्वारा उस दिव्य ज्योतिको पहचान लिया है, वह पुरुष (ब्राह्मण हो या शूद्र) नाना प्रकारके अन्नके साथ समृद्ध धनको प्राप्त करता है; फिर उसी दिव्य अन्नके सेवनसे आकाश और पृथ्वीको भी देख लेता है अर्थात् वह सभी पदार्थोंका तारतम्य समझ जाता है कि कैसा अन्न लेना चाहिये या कैसा व्यवहार करना चाहिये आदि। इस मन्त्रमें भी अन्नकी त्रिविध पवित्रता ही अपेक्षित है—जाति अपेक्षित नहीं।

---

१. एधोदकं मूलफलम् अन्नमभ्युतं च यत् सर्वतः प्रतिगृह्णीयात् मध्वथाभय दक्षिणाम्। आहृताभ्युद्यतां भिक्षां पुरस्तादप्रचोदिताम्। मेने प्रजापति ग्राह्याम् अपि दुष्कृत कर्मणः। मनु० ४।२४७-४८।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर्युषितं पूतिं चान्नं मांसमुच्छिष्टभोजनम् ।
अमेध्यं पापवृत्त्याऽऽप्तमभक्ष्यं, तन्न भक्ष्यताम् ॥८॥

जो अन्न एक-दो दिनका पका होनेसे दुर्गन्धयुक्त हो गया हो, माँस, उच्छिष्ट भोजन,जो दूसरोंसे खाते-खाते वच गया हो, जो मल-मूत्र, नाकका मल या थूक, पीक या पसीना आदिसे अपवित्र हो चुका हो अथवा किसी जीवके उसमें मर जानेसे वह विषाक्त हो चुका हो और जो पापमय जीविकासे प्राप्त हुआ हो, इस प्रकारका अन्न वाहरसे सुन्दर और स्वादु होने पर भी अभक्ष्य है। ऐसे अन्नसे परलोक तो नष्ट होता ही है, प्रत्युत स्वास्थ्य भी नष्ट हो जाता है। किन्तु किसी महान् संकटकालमें इनमेंसे कुछ भक्ष्य भी हो जाय तो और वात है। मनुने पर्युषित (वासी) अन्नपर कुछ अपवाद भी लिखे हैं,[२] अर्थात् जो घृत-पक्व, तैल-पक्व अथवा यज्ञ-शेष हो, एवं जो पदार्थ दुर्गन्ध-युक्त न हुआ हो उसे कुछ दिनका पका होनेपर भी खा लेना चाहिये। दूसरा, भुना हुआ चना, पापड़, सत्तू और गेहूँ, तथा दूधकी बनी मिठाई आदिको

त्रिभिः पवित्रै अपुष्टेद् हि अर्कम् हृदा मतिम् ज्योतिरनुप्रजानन् वर्षिष्ठं रत्नमकृत स्वधाभिरादिद् द्यावा पृथिवी पर्यपश्यत् । ऋ० ३।२।२६।८।

२ यत् किञ्चित् स्नेहसंयुक्तं भक्ष्यं भोज्यमगर्हितम् । तत्पर्युषितमप्याद्यं हविश्शेषं च यद् भवेत् । चिरस्थितमपि ह्याद्यमस्नेहाक्तं द्विजातिभिः यव-गोधूमजं सर्वं पयसश्चैव विक्रिया । मनु० ५।२४-२५ ।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खा लेना चाहिये। इसके अतिरिक्त वर्तमान रासायनिक द्रव्योंसे तैयार किया हुआ डबल रोटी, बिस्कुट आदि भोज्य हो तो उसे भी पर्युषित होनेपर भक्ष्य ही समझना चाहिये। किन्तु जो अन्न बालकों, अतिथियों और वृद्धोंको खिलाकर शुद्ध रूपमें बचा कर रक्खा हुआ हो, उसे कदापि उच्छिष्ट न समझना, प्रत्युत वह तो 'विघस' अन्न है जो पुण्यात्माओंको ही खानेको मिलता है।

मांस-भक्षणका लौकिक फल

वपुःस्वास्थ्यं च संलक्ष्य लौकिकं सौख्यमेव च।
अत्युग्रकार्यसिद्ध्यर्थं वा मांसं लोकफलं वहेत् ।.१॥

यदि शीत प्रधान देशमें शरीरका स्वास्थ्य मांसकी अपेक्षा रखता हो अथवा विशेष रोगावस्थामें वैद्यों द्वारा मांस रस देना आवश्यक हो अथवा दौर्बल्यमें वाजीकरण आदि रूपमें वह अपेक्षित हो अथवा महायन्त्र चालन, सैन्यकर्म आदि अत्युग्र कर्म अपेक्षित हों जो मांस भोजन द्वारा ही सिद्ध हो सकते हों, तो इस लौकिक प्रयोजनको पूरा करनेके लिये मांसका प्रयोग, यदि रुचि हो तो, किया जा सकता है। यह नैसर्गिक आहार तो नहीं है, काल्पनिक आहार है; अतएव इससे लौकिक फल तो मिलता है किन्तु परलौकिक सौख्यकी आकांक्षा रखनेवालोंको इसे न खाना चाहिये। हमें तो 'प्रवृत्तिरेषाभूतानां निवृत्तिस्तु महाफला' इस मनुके इस वचनानुसार निवृत्ति पक्ष ही लेना चाहिये। हाँ, मांस भोजियोंसे घृणा भी न करनी चाहिये।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गो-रक्षा अत्यावश्यक

आर्यशास्त्रे च गौःपूज्या सा चाघ्न्या चादितिर्मता ।
तस्मान्न सा क्वचिद्धन्ध्या देवतुल्या हि सा मता ॥१०॥
गवां दुग्धेन जगतो जीवनं स्वास्थ्यमुत्तमम् ।
तस्मात् कृतज्ञताभावाद् अनार्यैरपि रक्ष्यताम् ॥११॥

आर्य शास्त्रोंमें गौको देव तुल्य पूजनीय माना है। वेदोंमें उसे 'अघ्न्या' और 'अदिति' कहा गया है, जिसका अर्थ "यह न मारने योग्य है, न काटने योग्य है, इसे किसी दशामें न मारना चाहिये। यतः यह समग्र जगत्का जीवन-केन्द्र है; बच्चों और वृद्धोंके लिये इसका दूध अमृत-तुल्य, और युवकोंके लिये मक्खन, और घृतयुक्त दुग्ध तो सर्वोत्तम वाजीकरण माना गया है, रोगियोंको स्वास्थ्य प्रदान करनेवाला सर्वोत्तम रसायन भी गोदुग्ध ही है। सभी प्रकारकी मिठाईका मूल कारण भी गोदुग्ध ही है। अतः यदि दूसरे मत-वाले सच्चे हृदयसे कृतज्ञ हों तो उन सबको—मुसलमानो और इसाइयोंको भी गो-रक्षा करनी चाहिये। वैदिक—साहित्यमें लिखा है [1] यह गौ, वसु, रुद्र और आदित्य ब्रह्मचारियोंकी माता, कन्या, और बहिनके बराबर है। समस्त जगत्को अमृत

१ माता रुद्राणां दुहिता वसूनां स्वसादित्यानाममृतस्य नाभिः— प्रनुवोचं चिकितुषे जनाय मागामनागामदितिं वधिष्ठ मम चामुष्य च पाप्मा हतः। पारस्कर

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पहुँचानेका यही केन्द्र है, सबको जीवन-प्रसाद इसीसे मिल रहा है, अतः मैं तुझे सावधान करता हूँ कि इस निरपराध गौको कभी मत मारो, यह मारने या काटने योग्य है ही नहीं; अतः इसे मत मारो, अपने पापोंको ही मारो जिससे जीवन सार्थक बने। दूसरे स्थानपर भी गौकी महिमामें लिखा है[२]—हे गौवो! तुम दुर्बलको हृष्ट-पुष्ट और निस्तेजको तेजस्वी बनाती हो, तुम जिस घरमें रहती हो उस घरके प्रत्येक व्यक्तिको सुखी बना देती हो; अतः प्रवक्ता लोग तुम्हारा ही यशगान करते हैं।

सभी गोरक्षक आर्य हैं

गोमांसं यो न भुञ्जीत गोहिंसां नानुमन्यताम्।
सोऽप्यार्यवद् समादृत्यो व्यवहार्यश्च संसदि ॥१२॥

जो व्यक्ति यदि गोमांस नहीं खाता न गोहिंसा करता है, और न हिंसा के पक्षमें है वह चाहे किसी भी सम्प्रदायका हो उसका आर्यकी तरह आदर हो और सभामें उसके साथ सभी आर्य्यों व्यवहार करना चाहिये, क्योंकि वह आर्यजातिके बहुत समीप आगया है।

भक्ष्याभक्ष्यमें आपद्धर्म

आपत्काले तु संप्राप्ते यादृशं भोजनं मिलेत्।
प्राणरक्षाफलं तत्र न दोष इति मन्यताम् ॥१३॥

यूयं गावो मेदयथा कृशं चिद् अश्रीरं चित् कृणुथः सुप्रतीकम्, भद्रं गृहं कृणुथ भद्रवाचो बृहद्वो वय उच्यते सभासु। अथर्व—४।६।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यश्चिद् राष्ट्रान्तरे तिष्ठन् यस्यां वा संस्थितौ वसन् ।
अभक्ष्यमपि भुञ्जानः आर्यश्चेद् आर्य एव सः ॥१४॥

आपत् कालमें—पराधीन अवस्थामें—जैसा भी भोजन मिले खा लेना चाहिये। ऐसे कठिन समयके लिये शास्त्रोंमें कोई दोष नही माना गया है, क्योंकि वहां प्राण-रक्षा ही मुख्य ध्येय है। अन्ताराष्ट्रिय जीवनमें खान पानकी अनुकूल स्थितिके न होनेपर भी वह 'धर्म-हीन' नहीं समझा जाता।

आर्यधर्मः सदा शुद्धः कदाचिन्न क्षयं व्रजेत् ।
आपद्यभक्ष्य-भुक्तौवा चास्पृश्यस्पर्शनेऽपि वा ॥१५॥

आर्यधर्म तो सदा ही शुद्ध है, वह ऐसा निर्बल नहीं जो आपत्कालमें किये हुए अभक्ष्य भक्षण या अस्पृश्य स्पर्शसे नष्ट हो जाय। यह भोजन और स्पर्श सम्बन्धी दोष तो शरीर तक ही सीमित रहते हैं, धर्म तो आध्यात्मिक तत्व है, उसका खान-पान या छुआ-छूतसे पतन कैसा? अन्यथा शूद्र तो सदाके लिये धर्महीन समझा जायगा।

उपसंहार

तथापि सर्वयत्नैः स भक्ष्यं भोजनमाचरेत् ।
येन स्वास्थ्यं च धर्मश्च द्वे स्यातां रक्षिते सदा ॥१६॥

हमें सर्व प्रयत्नोंसे भक्ष्य भोजन करना चाहिए, अभक्ष्यसे बचकर ही रहना चाहिये, जिससे स्वास्थ्य भी बना रहे और धर्मकी रक्षा भी।

इति भक्ष्याभक्ष्य-मीमांसा-प्रकरणम् ।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अथ वर्ण प्रकरणम्

वेदमें चार ही वर्ण हैं:—

ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रश्चैव चतुर्थकः ।
पञ्चमो नास्ति लोकेऽस्मिन् वर्णो वेदानुकूलतः ॥१॥

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ये चार ही वर्ण वेदमें माने गये हैं। पाँचवाँ कोई वर्ण नहीं है, जिसे अन्त्यज या अन्त्यावसायी कहा जाय, यह प्रथम प्रकरणमें भली-भाँति स्पष्ट हो चुका है।

वर्णव्यवस्था मूलमें कर्म मूलक है

वैदिको वर्णबन्धोऽयं सार्वभौमोऽस्ति कर्मतः ।
केवलं जन्मसाहाय्यं कर्मसौष्ठवलब्धये ॥२॥

यह वर्ण-निर्माण वैदिक होनेके कारण कर्मानुसार है अतएव वह सार्वभौम भी सिद्ध हो जाता है, इसको केवल जन्म मूलक द्विजोमें मान लेना उचित नहीं। जब समस्त संसार ही कर्ममूलक माना गया है, सुख-दुःख भी कर्ममूलक हैं, तो यह वर्णव्यवस्था केवल जन्ममूलक कैसे मानी जा सकती है ? हाँ, जन्मकी इतनी विशेषता अवश्य है कि उनमें पितृ, पितामहोंके संस्कारसे कर्म सौष्ठव अवश्य हो जाता है जो आगे चलकर कर्मणा वर्णों में भी आ सकता है। तब भी मूल कारण कर्मको ही मानना चाहिए। इतिहास भी इसकी पुष्टि करता है[1]—

---

१ सिन्धुद्वीपश्च राजर्षिः देवापिश्च महातपाः ब्राह्मण्यं लब्धवानत्र विश्वामित्रो यथा मुनिः (महा॰ शल्यपर्व) एवं—पुत्रो गृत्समदस्यापि सुनको
CC-0 In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.
नाम शौनकः ब्राह्मणा क्षत्रियाश्चैव वैश्या शूद्रास्तथैव च। एतस्य

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समाज-निर्माणमें चार वर्ण

शिक्षको ब्राह्मणः प्रोक्तः रक्षकः क्षत्रियो मतः ।
पोषकस्तत्र वैश्यः स्यात् श्रमकः शूद्रको मतः ॥३॥

मानव-समाजमें शिक्षक ब्राह्मण श्रेणीमें, रक्षकवर्ग क्षत्रियोंमें, पोषकवर्ग वैश्योंमें और श्रमकवर्ग शूद्रोंकी श्रेणीमें आ जाता है ।

राज्य-प्रबन्धमें चार वर्ण

प्रबन्धे मार्गदो विप्रः, क्षत्रियस्तत्प्रयोजकः ।
शूद्रो वस्तुप्रदस्तत्र, वैश्यो वित्तसहायकः ॥४॥

राज्य-प्रबन्धमें नियम बनानेवाले ब्राह्मण, उक्त नियमोंको प्रयोगमें लानेवाले रक्षक और सैनिक क्षत्रिय, उस प्रबन्धमें उपयोगी वस्तुओंका निर्माण करनेवाले शूद्र और व्यापार करने वाले वैश्य कहे जाते हैं ।

पदार्थ निर्माणमें चार वर्ण

वस्तुविज्ञानदो विप्रः तन्निर्माता च शूद्रकः ।
तद्विभक्ता च वैश्यः स्यात् क्षत्रियस्तत्प्रबन्धकः ॥५॥

रेल, मोटर, विमान, सेतुनिर्माण आदिकी निर्माण शिक्षा-देनेवाला ब्राह्मण उस ज्ञानके द्वारा निर्माण करनेवाला शूद्र,

---

वंशे सम्भूता विचित्राः कर्मभिः कृताः (वायु० पु०) एवं,—एकवर्णमिदं सर्वं विश्वमासीद्युधिष्ठिर ! क्रियाकर्मविभेदेन चातुर्वर्ण्यं प्रतिष्ठितम् , म० व० १८० अ० ।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसे जनतामें विभक्त करनेवाला वैश्य और उनके शिक्षण आदिका प्रबन्ध करनेवाला क्षत्रिय है।

आयुर्वेदमें चार वर्ण

विप्रो वैद्यकशिक्षादः शूद्रस्त्वौपधयोजकः ।
विक्रेता चौपधे वैश्यो राजारोग्यप्रबन्धकः ॥६॥

आयुर्वेदकी शिक्षा देनेवाला ब्राह्मण, शिक्षानुसार औपध-निर्माण करनेवाला शूद्र, ओपधि विक्रेता वैश्त और चिकित्सा-लयोंका प्रबन्ध करनेवाला क्षत्रिय कहा जायगा।

इसी प्रकार भिन्न-भिन्न कार्योंमें वर्णोंकी कल्पना की जा सकती है।

इमे वर्णा समे श्रेष्ठाः स्व-स्व-कर्मणि धर्मतः ।
कश्चिन्न नीचो विज्ञेयो यतः सर्वे हि मानवाः ॥७॥
स्व-स्व-कार्ये समे वर्णाः स्वस्वोत्कर्षवहा मताः ।
तस्मात्सर्वैर्वर्णपुम्भिर्भ्रातृवत्सम्प्रवृत्यताम् ॥८॥

धर्मानुकूल अपने-अपने वर्णानुसार सभी श्रेष्ठ हैं, अतः वे एक-दूसरेको नीच न समझें। सभी मानव एक समान हैं—मनुपुत्र हैं। दूसरे, अपने-अपने क्षेत्रमें सभी उत्कृष्ट हैं। शास्त्र-व्यवस्था देनेमें यदि ब्राह्मणका उत्कर्ष है तो दण्ड-व्यवस्थामें क्षत्रियका। धन-व्यवस्थामें वैश्य उत्कृष्ट है तो कला-कौशलमें शूद्रका उत्कर्ष है। इसी बातको आगे और भी स्पष्ट किया गया है।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज्ञाने चेद् ब्राह्मणः श्रेष्ठः क्षत्रादिः कर्मणि प्रभुः ।
ज्ञानं कर्म च तुल्ये द्वे अन्योन्याऽपेक्षके मते ॥९॥

ज्ञानमें ब्राह्मण श्रेष्ठ है और कर्ममें क्षत्रिय आदि तीनों श्रेष्ठ हैं। परस्परापेक्षामें ज्ञान और कर्म दोनों ही श्रेष्ठ हैं।

इन चारों वर्णोंमें ऊँच-नीचका भाव नहीं, प्रत्युत अङ्गाङ्गी भाव है।

ब्राह्मणका स्वरूप

जितेन्द्रियस्तपस्वी च सरलः शान्तिमान् वशी ।
वेदज्ञश्च पवित्रश्च सदाचारी सुशीलवान् ॥१०॥
जातेर्ग्रन्थनकर्ता च याजकोऽध्यापकः समः ।
परोपकारी वीरश्च धीरो ब्राह्मण उच्यते ॥११॥

ब्राह्मणको सदैव जितेन्द्रिय, तपस्वी, सरल स्वभाव, शान्त, मनको वशमें रखनेवाला, वेद-शास्त्रज्ञ, शुद्धजीविका सम्पन्न सदाचारी और सुशील होना चाहिए। उसमें जाति-संघठनकी शक्ति होनी चाहिए। वह स्वयं यज्ञादि कर्म करने और करानेकी योग्यतावाला भी हो, और अध्यापनमें पूर्ण योग्य, परोपकारी, समदृष्टिवाला, वीर-धीर और गम्भीर भी हो।

जन्माभिमान उन्नतिमें बाधक है

ब्राह्मणो जन्मजाद् गर्वाद् स्वोन्नतौ नोत्सहेत वै ।
शूद्रोऽपि जन्मजाऽस्पर्शात् स्वोन्नतौ बाधितो भवेत्॥१२

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जन्मजो यस्त्वहंकारो ब्राह्मणं पातयेदधः ।
शूद्रस्य जन्मजातश्च तिरस्कारोऽपि नोन्नयेत् ॥१३॥

"मैं ब्राह्मणकुल-जन्मा हूँ" यह गर्व उसकी उन्नतिमें बाधक होता है। वह समझता है कि मैं ब्राह्मण तो जन्मसे ही हूँ, फिर विद्याध्ययन करूँ या न करूँ एक ही बात है। यह जन्मसे ही ब्राह्मण होनेका अभिमान उसे ऊपर उठने नहीं देता। इसी प्रकार शूद्रका जन्मजात अस्पर्श भी उसकी उन्नतिमें बाधक होता है। वह समझता है कि "मैं जितनी भी उन्नति करूँगा, उससे मेरा अछूतपन तो हट नहीं जायगा, तब क्यों यत्न किया जाय?" बस, इसी जन्मजात संस्कारने ब्राह्मणको जहाँ नीचे गिरा दिया, वहाँ इसी संस्कारने शूद्रको भी ऊपर उठने नहीं दिया, अतएव दोनोंकी उन्नति रुक गयी।

भला कर्मप्रधान भूमिमें जन्मका क्या महत्व? मनुने भी जन्माभिमानीको "जात्या ब्राह्मण" कहकर तिरस्कृत किया है और ज्ञानको ही महत्व दिया है[1]। जब हमारे सम्मुख अन्तारराष्ट्रिय सम्बन्ध उपस्थित है, हमें भूमण्डलके बड़े-बड़े विद्वानों, सैनिकों, व्यापारियों और शिल्पियोंसे मिलना है, उनको अपना ज्ञान-विज्ञान देना है और उनसे नवीन ज्ञान-विज्ञान लेना है, इस अवस्थामें हम उनके सम्मुख जन्मकी महिमा को किस रूपमें रखेंगे। हमने भूमण्डलको आर्य बनाने का तो

१. मनु २।१५७—१५८—१६६—१६७।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निश्चय किया हो किन्तु ले बैठें जन्मके गर्व को, इस अवस्थामें हमारा सफल होना तो दूर रहा, प्रत्युत गहरी मुँहकी खायेंगे।

क्षत्रियका स्वरूप

विद्वान् राज्यप्रबन्धा स्यात् गोविप्रस्त्रीषु रक्षकः।
संयमी तेजसा युक्त उग्ररूपश्च शासकः ॥१४॥
निर्भीकः शत्रुभयदो व्यायामी पुष्टदेहवान्।
नीरुक् च साहसी धीरो नीतिज्ञः क्षत्रियो मतः ॥१५॥

क्षत्रियको विद्वान्, राज्यप्रबन्धक, गो-ब्राह्मण-दीन-असहाय रक्षक, संयमी, तेजस्वी और उग्र स्वरूपवाला शासक होना चाहिए। वह व्यायामी, पुष्टशरीर अतएव नीरोग रहकर स्वयं सदा निर्भय रहता हुआ किन्तु अपने तेजसे शत्रुओंको भयभीत करनेवाला हो, उसे जहां साहसी और धीर होना चाहिये वहां नीतिनिष्णत होना भी आवश्यक है।

वैश्यका स्वरूप

कृषिकर्मप्रवीणः स्यात् गोपालनपरायणः।
व्यापारशास्त्रे यात्रायां दक्षो वित्तस्य वर्द्धकः ॥१६॥
शास्त्रज्ञो धर्मसम्पन्नो ब्राह्म-क्षत्रसहायकः।
व्यायामी पुष्टभुग् वीरो धीरो वैश्य उदाहृतः ॥१७॥

वैश्यको कृषिशास्त्रका ज्ञाता, गोपालन-विज्ञानका विद्वान्, व्यापार-कुशल, यात्राचतुर, धनवृद्धिकरने वाले उपायोंको जानने वाला और अर्थशास्त्रका ज्ञाता होना चाहिये। उसे धर्म शास्त्रज्ञ

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और धर्मरहस्यज्ञ भी होना चाहिये। अवसर आनेपर ब्राह्मणों एवं क्षत्रियोंके कार्योंमें सहायक भी होना चाहिए। उसे व्यायामी पुष्टभोजी, वीर और धीर भी होना चाहिये।

शूद्रका कार्यक्षेत्र

शिल्पकार्य प्रवीणः स्यात् यन्त्रनिर्माणपण्डितः।
विद्युत्कार्यप्रवीणः स्यात् धर्मकर्मसमन्वितः ॥१८॥
यः कलाज्ञानशून्यः स्यात् श्रमजीवी भवेदसौ।
सेवाजीवी भवेद्वापि स शूद्रो वर्ण उच्यते ॥१९॥

जो शिल्पकार्य, यन्त्र-निर्माण एवं विद्युत्वस्तु-निर्माणमें प्रवीण तो हो ही, साथ ही धर्मात्मा भी हो तो उसे शूद्र समझना चाहिये। जो किसी भी कलाका ज्ञान न रखता हो उसे श्रमजीवी और सेवाजीवी होकर रहना चाहिये।

चेत्स्ववर्ण क्रियाया यो निश्शक्तः कार्यचालने।
सोन्यवर्णक्रियापूर्तौ यत्नवान् स्यान्न दोषभाक् ॥२०॥

जो अपने वर्णके कार्य द्वारा अपनी जीविका चलानेमें असमर्थ हो, उसे किसी दूसरे वर्णके कार्य द्वारा भी निर्वाह करलेना चाहिये। इसकी पुष्टि मनुने भी कीहै[1]।

समानाधिकार—

उत्सवे सैन्यकार्ये च शिक्षागारे च भोजने।
मन्दिरे देश सेवायां सर्वे वर्णाः समाः स्मृताः ॥२१॥

---

१ मनु० अ० १०। ८१—८२ श्लोक,

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सब वर्णोंको उत्सव, सेवाकार्य विद्यालय, भोजन, मन्दिर और देशसेवा आदि कार्योंमें समान अधिकार है। इन अवसरों पर कोई किसी प्रकारका भेद-भाव न होना चाहिये, क्योंकि—

सर्वे विराट्स्वरूपस्य प्रभोरङ्गानि सम्मताः।
तानि सर्वाणि पूज्यानि स्व-स्वस्थाने शुभानि च ॥२२

सभी वर्ग विराट् रूप प्रभुके अंग है, अतः वे अपने-अपने स्थानमें आदरणीय हैं। सभी अपने कार्यक्षेत्रमें उत्तमता रखते हैं, हमें अब यह संस्कार अपने हृदयसे निकाल देना चाहिये कि शूद्र पाद है, अतः वह नीच है। जब मनुष्यका भी कोई अंग उपेक्षणीय नहीं है सभी आवश्यक हैं, तब भगवानके अंङ्गतो सभी उत्तम हैं ही।

वर्णोंकी परस्पर सहायता—

पादे कण्टकवेधश्चेद् ब्राह्मणः क्रन्दते भृशम्।
क्षत्रियो हस्तरूपः सन् तन्निस्सार्य सहायकः ॥२३॥
शीर्षे चाक्रमतां कश्चिद् दण्डंपातयितुं चलेत्।
तदा भुजौ द्वौ शिरसो रक्षणाय सदोद्यतौ ॥२४॥

जैसे जब कभी पैरमें काँटा चुभ जाय तो मुख चिल्लाता हैं और हाथ उसे गोदमें बैठाकर उसका काँटा निकाल लेते हैं, ठीक इसी तरह जब शूद्रपर संकट आता तो ब्राह्मण पुकारता था कि हाय! शूद्रपर संकट आया उसे बचाओ! नहीं तो सब निकम्मे हो जाओगे। तब क्षत्रिय उनको वैश्योंसे धनकी सहायता

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
दिलाकर उनके कष्टोंको दूरकर देते थे। एवं कभी कोई शत्रु किसीके सिरपर डंडेसे चोट करता तो हाथ आगे आकर सिरको बचा लेते हैं, उसपर चोट नहीं आने देते। इसी प्रकार जब ब्राह्मण पर कोई संकट आता था तो क्षत्रिय लोग तत्काल पहुँचकर उसकी रक्षा करते थे। वे समझते थे कि इसीके स्वास्थ्यपर हमारा जीवन निर्भर है।

ब्राह्मण की सावधानता—

मस्तिष्को ब्राह्मणः कश्चिद् प्रमादं यदि पद्यताम्।
तदा सर्वाणि चाङ्गानि पत्स्यन्ते कर्महीनताम् ॥२५॥
ब्राह्मणोऽतो जागरूकः सप्रयत्नो भवेद् यतः।
तदाधारेण सर्वे वै जीवन्ति स्वीयकर्मणि ॥२६॥

जब मस्तिष्क विकृत हो तो सभी अङ्ग क्रियाशून्य हो जाते हैं, ठीक इसी प्रकार ब्राह्मणके असावधान, प्रमादी अथवा स्वार्थी हो जानेपर—उसके द्वारा होनेवाले प्रचारके रुक जानेपर—शेष सभी वर्ण कर्तव्यहीन हो जाते हैं। इसलिये ब्राह्मणको सदा अपने कर्तव्यमें सावधान और प्रयत्नशील होना चाहिये। वह समझे कि मेरे कर्तव्य हीन हो जानेपर सम्पूर्ण राष्ट्र ही अस्त-व्यस्त हो जायगा; क्योंकि सबको शिक्षा द्वारा कर्तव्य पथ सुझाना ब्राह्मणका ही एक मात्र दायित्व है।

ब्राह्मण की वृत्ति—

ब्राह्मणस्यार्थलाभाय त्रयोमार्गा उदीरिताः।
अध्यापनं याजनं च सात्विकश्च प्रतिग्रहः ॥२७॥
CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

याजनाध्यापनाभ्यां चेज्जीवनं साधु नो चलेत् ।
तदा प्रतिग्रहो युक्तस्त्वन्यथा भारभृद् भवेत् । २८ ।

सेवया जीविकापि स्यात् कृष्या व्यापारतोऽथवा ।
न तु प्रतिग्रहः शस्तो निकृष्टो मनुनोदितः ॥२९॥

विप्रः परेषां पाता स्यात् न परेभ्यः स्वपालकः ।
परापेक्षी भवेद्यस्तु स दीनः परभाग्यभुक् ॥३०॥

ब्राह्मणकी जीविकाके लिये अध्यापन, याजन और सात्विक प्रतिग्रह (दान) ये तीन वृत्तियाँ—जीवनोपाय हैं। इनमेंसे यदि प्रथम दो वृत्तियोंसे पूर्ण निर्वाह न हो सके तो प्रतिग्रह लिया जा सकता है, नहीं तो उसे भार ही समझना चाहिए। दूसरे के पारिश्रमिकको लेना उसे तेजस्वी नहीं बनाता, इससे तो सेवा, कृषि या व्यापारसे ही निर्वाह कर ले किन्तु प्रतिग्रह (दान) में संकुचित ही रहे। मनु ने भीइसे * निकृष्ट ही कहा है। ब्राह्मणको अपने अन्नसे दूसरे विद्यार्थियों या दीनोंका पालक ही होना चाहिये किन्तु दूसरोंसे अपने ही पालनका प्रबन्ध करना उत्तम नहीं। ऐसा परमुखापेक्षी ब्राह्मण तो दीन और परभाग्यापजीवी समझा जायगा, जो ब्राह्मणके लिये तेजस्विताजनक नहीं हो सकता। ब्राह्मणको तो वेदानुसार ब्रह्मवर्चसी ही होना चाहिये।

---

* ऋ० ७—८—१—३ ।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्षत्रियस्यार्थलाभाय सैन्यवृत्तिः प्रशस्यते ।
भूपवृत्त्याथवा जीवेद् सेवावृत्तिरथापदि ॥३१॥

क्षत्रियको विद्याध्ययनके साथ सैन्यवृत्ति अथवा भूमिकर वृत्तिसे निर्वाह करना चाहिये। यदि उक्त निजवर्णानुकूल वृत्ति द्वारा प्रतिष्ठाजनक निर्वाह प्राप्त न हो सके तो सेवा वृत्तिसे भी जीवन-निर्वाह किया जा सकता है।

वैश्यस्य जीविकायैतु सर्वोत्कृष्टा कृषिः स्मृताः ।
व्यापारो गोष्ठवृत्तिर्वा सेवावृत्तिरथाऽऽपदि ॥३२॥
केचित् कुसीदवृत्याऽपि मन्यन्ते वैश्यजीवनम् ।
वृत्त्याऽनया प्रायदृष्टो लाभोत्यल्पो बहुः क्षयः ॥३३॥
उत्तमा वणिजस्तेस्युः व्यापारे शिल्पकेऽथवा ।
बहु वित्तं व्ययीकृत्य लाभभाजो भवन्ति ये ॥३४॥
ते प्राज्यलाभगाः श्रेष्ठा उद्योगे सम्मिलन्ति ये ।
लक्षाणि कोटीः संगृह्य धर्मतस्त्वेककार्यगाः ॥३५॥

वैश्यकी जीविकाके लिये कृषि-जीवन सर्वोत्कृष्ट है, इसमें निश्चित आय होती है और भूमिमें फेंके गए एक बीजसे सौ गुना अन्न प्राप्त होता है। तभी तो वेदने एक द्यूतकारको जुवेसे हटाते हुए यह उपदेश दिया है * "हे जुआरी, पासोंसे मत खेल, यदि खेलना भी है तो भूमिमें दाने फेंककर दाँव लगादे;

* ऋ० ७—८—५—३ ।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन पाँसोंसे कुछ प्राप्त हो या न हो, सन्देह है पर भूमिपर डाले हुए दाने कभी व्यर्थ न जाएँगे। इससे तू धनसे खेलता रहेगा। तेरी गौवें और तेरा परिवार भी इसीसे पलेगा। यह सूर्य देवता तेरी सम्पूर्ण खेतीको पका देगा।"

उसके लिए दूसरा जीवनसाधन है व्यापार और पशुपालन, ये सभी जीवनोपाय शास्त्रमर्मज्ञोंको ही प्राप्त होते हैं, जो इन विद्याओंको जाननेमें असमर्थ हों वे सेवावृत्तिसे निर्वाह करें।

कुछ विद्वानोंके मतसे वैश्यके लिए कुसीदवृत्ति भी मानी गयी है कि "वह व्याज लेकर जीविका चलावे", पर इससे लाभ अल्प और हानि अधिक होती है। इससे उत्तम यही होगा कि धनको सूदपर न लगाकर उसे व्यापारमें ही लगावे, जिससे निश्चित लाभ हो। इससे भी उत्तम मार्ग सामूहिक व्यापार है जिसमें कुछ धनिक मिलकर किसी उद्योगमें धन लगा दें। परन्तु इसमें सबको पूर्णतया धर्मपूर्वक ही चलना होगा—सबको अपना उचित एवं मर्यादित भाग ही प्राप्त करना होगा।

शूद्रका जीवनोपाय

विद्युद्-विद्यासु यन्त्रेषु महालोहादिलापने।
पोतादिचालनेनापि शूद्रो जीवेत्तु सेवया ॥ ३६ ॥
शूद्रवृत्तिर्महाक्लिष्टा महालाभप्रदाऽपि च।
केवलैः श्रमकार्यैस्तु लाभोऽल्पः शुद्ध एवसः ॥ ३७॥

शूद्रकेलिये वैद्युत यन्त्रोंका निर्माण लोहमयपदार्थोंका

CC-0 In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
गलाना, जलयानादिका चलाना अथवा अन्य सेवा कर्म करना। यद्यपि शूद्रवृत्ति कष्टसाध्य होती है किन्तु इससे लाभ भी महान् होते हैं। जो इन गुणोंको न जानता हो, उसे हस्तशिल्प या श्रमजीवनसे निर्वाह कर लेना चाहिये, इससे शुद्ध और सात्विक धन प्राप्त होता है, इसीलिये श्रमजीवी अधिक धर्मात्मा समझा जाता है।

जीविकाके तीन भेद

श्रमवृत्तिर्बुद्धिवृत्तिश्छलवृत्तिस्तृतीयका।
उत्तमा मध्यमा चैव निकृष्टा क्रमतो मता ॥ ३८ ॥
सर्वैर्वर्णैः स्व-स्ववृत्तिः प्राप्तव्या धर्ममार्गतः।
धर्मेण चेहलोकेऽपि परलोकेऽपि सद्गतिः ॥

जीविका सामान्यतया तीन प्रकारकी होती है। (१) श्रम-वृत्ति, (२) बुद्धिवृत्ति, (३) छलवृत्ति। इनमेंसे प्रथम वृत्ति श्रमके अनुकूल धन प्राप्त करनेसे उत्तम मानी गयी है। दूसरी वृत्ति मध्यम, क्योंकि उसमें चतुरपुरुष बुद्धिद्वारा श्रमजीवियोंका शोषण करके स्वयं अधिक लाभ प्राप्त करते हैं, तीसरी वृत्ति तो निकृष्ट मानी गयी है, इसमें वञ्चना, चोर बाजारी, मिथ्यावस्तु को वास्तविक बताना, अर्थात् मिथ्याप्रपञ्चों द्वारा जीविको-पार्जन करना। इस जीविकासे मनुष्यका नैतिकपतन तो होता ही है साथ ही वह अपनी विश्वासपात्रता भी खो बैठता है। अतएव इस वृत्तिका आश्रयण कभी न करना चाहिये। सभी
CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्गोंको धर्मानुकूल अपने वर्णमें रहकर जीविकोपार्जन करनेसे लोकमें सम्मान प्राप्त है, पारलौकिक सुखका अधिकारी भी वह हो जाता है। व्यापार और वर्णानुकूल जीविकाके सम्बन्धमें यही भारतीय संस्कृतिका स्वरूप है।

भाषाके प्रकार और उसकी महत्ता

भाषा स्यात् त्रिविधा लोके सर्वकार्यप्रसाधिका।
धर्मभाषा राजभाषा प्रान्तभाषा तथैव च ॥ ४० ॥
संस्कृतं धर्मभाषा स्याद् राष्ट्रभाषा च भारती।
प्रान्तानां प्रान्तभाषा स्यात् सर्वाःस्वस्वप्रयोजनाः ॥४१॥
संस्कृते साङ्गवेदः स्यात् धर्मशास्त्रं पुराणकम्।
इतिहासश्चार्थकामनाट्यसंगीतवैद्यकम् ॥ ४२ ॥
राष्ट्रे तु भारती शिक्ष्या राष्ट्रजन्माभिमानिभिः।
यस्यां प्रान्तेषु वास्तव्याः सम्भाषेरन् परस्परम् ॥४३॥
अस्यां पत्रादिलेखः स्यादस्यां च गणितादिकम्।
अस्यामत्युच्चशिक्षा स्याद् इयं सर्वत्र भाष्यताम् ।.४४॥
प्रान्तभाषाऽपि संरक्ष्या स्वप्रान्ते चालिता भवेत्।
परं या राष्ट्रभाषा स्यात् सा तु स्यात् सर्वराष्ट्रगा ॥४५॥
भूमण्डलीयज्ञानाप्त्यै परभाषाऽपि शिक्ष्यताम्।
तदीयं ज्ञानसर्वस्वं स्वभाषायां प्रतायताम् ॥ ४६ ॥

आर्य्य जातिमें भाषा तीन प्रकारकी प्रचलित है धर्मभाषा, राष्ट्रभाषा और प्रान्त भाषा। इन तीनोंमें पहले वैदिक संस्कृत

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
धर्मभाषा थी और लौकिक संस्कृत राष्ट्र भाषा। वह न केवल अपने ही राष्ट्रमें प्रत्युत भूमण्डलमें बोली जाती थी, जिसके अपभ्रंश अब भी भूमण्डलकी सभी भाषाओंमें मिलते हैं परन्तु शनैः शनैः कालक्रमके अनुसार अब उक्त दोनों प्रकारकी संस्कृत, धर्मभाषा ही मानी जाती है, जिनमेंसे एकमें धर्म सम्बन्धी ६ अङ्गोंके साथ मिले हुए चार वेद, ब्राह्मण, सूत्रग्रन्थ और उपनिषद् आदि वैदिक साहित्य, दूसरेमें धर्म-शास्त्र; अग्नि-वायु आदि अष्टादश पुराण, रामायणादि इतिहास अर्थशास्त्र, कामशास्त्र, नाट्यशास्त्र, आयुर्वेदशास्त्र, ज्योतिषशास्त्र, बीजगणित, रेखागणित और ज्यामितिगणित आदि लिखे गये हैं।

दूसरी राष्ट्रभाषा 'भारती' है जो आजकल 'हिन्दी' नामसे व्यवहृत होती है। इसी राष्ट्रभाषामें प्रान्तोंका पारस्परिक आदान प्रदान होता है। राष्ट्रमें अत्युच्च शिक्षा व्याख्यानादि और पत्र व्यवहार सब इसीमें ही होना चाहिये। किन्तु बच्चोंके प्रारम्भिक शिक्षण आदि व्यवहारके लिए प्रान्तीय भाषा ही उपयुक्त एवं शीघ्र लाभदायक होती है।

दूसरे राष्ट्रोंसे व्यवहार, व्यापार आदिके लिए और तत्तद्देशीय भौगोलिक ज्ञान एवं अन्य प्रकारके विज्ञान आदि जाननेके लिए दूसरे राष्ट्रोंकी भाषा भी सीखनी आवश्यक है।

समताकी भावना

'सर्वं च खल्विदं ब्रह्म' घोषणा वेदपाठिनाम्।
तां समत्वमतिं ते वै दर्शयन्तु सुखावहाम्॥ ४७॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्याप्तं सर्वत्रं विष्णुं ये मन्यन्ते वैष्णावा जनाः।
तेषामग्रे शूद्रविप्रगोगर्दभशुकाः समाः ॥ ४८ ॥
सीताराममय सर्वमित्युक्तिर्यदि तथ्यभाक्।
तदा घृणातिरस्कारौ निर्गच्छेतां निजात्मनः ॥४९॥
तस्माद् विष्णोर्व्यापकत्वात्प्राण्येव स्नेहभाजनम्।
शूद्रास्तु सर्वथा स्नेह्या भ्रातरस्ते हि सम्मताः ॥ ५० ॥

सभी वेदशास्त्र पारग विद्वानोंकी यह घोषणा है कि "सर्वं खलु इदं ब्रह्म" अर्थात् सब कुछ ब्रह्म है, तब सर्वत्र ब्रह्मको देखते हुए उन विद्वानोंको वह समता की भावना जो वस्तुतः सबके लिए सुखकर है, व्यवहारमें लानी चाहिए। जो वैष्णव सर्वत्र विष्णुकी व्यापकता स्वीकार करते हैं, उनके लिए तो इतनी समता हो जानी चाहिए कि वे शूद्र-ब्राह्मण, गौ-पशु और पक्षी सबमें उस प्रभुकी सत्ता देखते हुए सबके साथ समताका व्यवहार करें।

जो विद्वान् 'सियाराम मय सब जग जानी" के अनुयायी हैं—वास्तवमें सबको "सीताराम मय" समझते हैं, उनके हृदयमें शूद्रोंके प्रति घृणा और तिरस्कारकी भावनाका उदय भी नहीं होना चाहिये; क्योंकि वे भी तो उसी सीतारामके ही अंश हैं। अतएव विष्णुको सर्वव्यापक माननेवालोंकी दृष्टिमें प्राणिमात्रके प्रति समान रूपसे स्नेह और आदर होना चाहिये।

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समवृत्ति विना तावत् समदृष्टिरसम्भवा ।
समता बुद्धिपूर्वा स्यान्नस्यादन्धपरम्परा ॥ ५१ ॥

जो व्यक्ति यह तर्क करते हैं कि "गीतामें समदर्शी होना लिखा है, समवर्ती होना तो नहीं"—उनका समाधान यही है कि-समवर्ती हुए विना समदर्शी होनेका कोई महत्त्व ही नहीं, कथन मात्रसे तो सभी अपनेको समदर्शी ही कहेंगे और कहते हैं, परन्तु परीक्षा तो समवर्ती होनेमें ही होती है। अतएव समवर्ती होना ही समदर्शी होनेका भाव पूर्ण कर सकता है। परन्तु वह समता बुद्धिपूर्वक और उचित रूपसे हो, इस प्रकारकी अन्ध परम्परा न हो कि गायका चारा मनुष्य या मनुष्यका भोजन गायके सम्मुख रखा जाय। समता का स्वरूप यह है—

मन्त्रः समान आकूतिः समानी समितिः सभा ।
समानी च प्रपा येषां तेषामेव जयः सदा ॥ ५२ ॥

मानवधर्म-सारसे

सामान्यं शक्तिसम्पन्नं वैशिष्ट्यं शक्तिहीनता ।
तस्माच्छक्तिप्रवृद्ध्यर्थं सर्वैः साम्यं स्थिरं भवेत् ।.५३॥

जिनका परस्पर मन्त्र-विचार एक-सा हो, मानसिक भावना एक-सी हो, सभामें एक साथ बैठ सकते हों और जिनकी जल पीनेकी शाला 'प्रपा' एक हो, उन्हींकी विजय निश्चित है। अतएव हममें जितनी समानता बढ़ती जायगी जितनी पारस्परिकता एक दूसरे वर्णोंमें बढ़ती जायगी उतनी ही पारस्परिक शक्ति भी

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बढ़ती ही जायगीं। अतः हमको अपनी आज तककी भूलका मार्जन करते हुए भविष्यकी उज्ज्वलताके लिए निरन्तर समताकी भावनाका प्रचार और आचरण करते रहनेका प्रयत्न करना चाहिये।

यूयं वयं वयं यूयमिति भावस्तु शक्तिदः।
परं स घातको भावो, यूय यूयं वयं वयम् ॥८४॥

जहां "तुम मुझसे मिलकर रहो और मैं तुमसे मिलकर रहूँ" यह भाव क्रियात्मक हो जाय, वहां दोनों पक्षोंकी शक्ति-वृद्धि सम्भव है। किन्तु इस अवस्थामें कि—"तुम-तुम और 'हम हम' वहां दोनों ही निर्बल रहेंगे, वहां तो तीसरा 'ही दोनों पर विजय प्राप्त कर लेगा। ऋग्वेदमें भी यही कहा गया है[1] हमारे विचार एक हों, हृदय मिले हुए हों, मिलकर बैठना हो आर्य पुरुषो! मैं तुम्हें साथ रहने, खाने और पीनेवाला बनाता हूँ। सायं-प्रातः सौमनस्य प्राप्तिके लिए तुम्हारा मिलकर बैठना हो जिससे तुम भी देवोंकी तरह अपनी जीवनरक्षा कर सको। तुम एक दूसरे को बड़ा बनाते हुए एकमार्गपर चलते हुए

---

१. समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति ऋग्वेद—१०।१९१।४। सध्रीचीनान् वः संमनसस्कृणोमि एकश्नुष्टीन् संवननेन सर्वान्। देवा इवाऽमृतं रक्षमाणाः सायं प्रातः सौमनसो वो अस्तु। एवं, ज्यायस्वन्तश्चित्तिनो मा वि यौष्ट संराधयन्तः सधुराश्चरतः अन्यो अन्यस्मै वल्गु वदन्त, एत सध्रीचीनान् वः संमनसस्कृणोमि। अथर्व ३।३०।५।७

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परस्पर मीठी वाणी बोलते चलो। मैं तुमको एक साथ मिलकर रहने और चलने की इच्छासे बनाता हूँ।"

आर्य जीवन कैसा हो ?

परार्थं जीवनं यत्स्याद् वस्तुतो जीवनं हि तत् ।
स्वस्मै च स्वीयसन्तत्यै क्षुद्रः काकोऽपि जीवति ॥५५॥
धनी सः परपोषी यो निर्धनः स्वकुटुम्बभृत् ।
सत्यापि निर्धनो ज्ञेयः करं कुर्यात्पराग्रतः ॥५६॥
भोक्तुं स्वादरताः सर्वे जिह्वाग्ररसलम्पटाः ।
धन्यो यशस्वः स पुमान् यः परान्भोजयेन्मुदा ॥५७॥
स्वराष्ट्रजातिसेवार्थं यत्नं नैव करोति यः ।
मन्येऽहं तं तृणात्तुच्छं कर्णकण्डूयनादपि ॥५८॥
धन्योऽसौ भूरुहो लोके मानवात् स्वार्थ जीवनात् ।
यश्छायापत्रशाखाभिः कोटरैः पर सौख्यदः ॥५९॥
परार्थं मरणं श्रेष्ठं मन्तव्यं स्वार्थजीवनात्
धन्यं यशस्यं मरणं ये मृताः परहेतवे ॥६०॥
स्वजीवनेन सुखदा लप्स्यन्तेऽन्वेषिता जनाः ।
परं स दुर्लभतमो यन्मृत्युः परहेतवे ॥६१॥
तस्माज्जीवनसार्थक्यं कर्तुकामेन जन्मिना ।
दधीचिशिबिजीमूतवाहनैर्जीव्यतां समम् ॥६२॥

जीवन तो वस्तुतः वही उत्तम है जो दूसरों की सेवा और सहानुभूतिमें लगे। उस जीवन का क्या महत्व जिससे केवल

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपना या अपनी सन्तान का ही निर्वाह हो। इस प्रकार का क्षुद्रातिक्षुद्र जीवन तो कौवे का भी होता है, वह भी अपनी उदर पूर्तिके पश्चात् चोंचसे भोजन लाकर अपनी सन्तानका भी पालन करता है। इस अवस्थामें तथा कथित मानव-जीवन और काक-जीवनमें क्या अन्तर है ?

धनवान् वस्तुतः वही है जो दूसरों की भी अन्नवस्त्रादिसे सहायता करे, किन्तु जो अपनी ही सन्तान का—अपने ही कुटुम्ब का पालन–पोषण करता है वह तो निर्धन है, निर्धन भी तो सन्तान की पालना करता ही है, इस पालनमें धनवान की क्या विशेषता हुई ? धनवान् का धन तो तभी सार्थक है जब वह अपने धन द्वारा दूसरों की सहायता करना प्रधान कार्य समझे। किन्तु सबसे अधिक निर्धन वह माना गया है जो अपनी उदर पूर्तिके लिये भी दूसरोंके द्वार पर जा-जाकर हाथ फैलाता है।

भोजनमें तो सबको स्वाद आता ही है क्योंकि सभी को जिह्वा का रस प्राप्त है, अपने स्वाद लेनेमें तो सभी लम्पट हैं। परन्तु धन्य तो वही पुरुष है जो दूसरों को खिलाते हुए प्रसन्न रहे, खानेमें तो स्वाद है ही पर खिलानेमें भी एक अद्भुत स्वाद है जो कुछ ही भाग्यवानों को प्राप्त होता है।

किन्तु जो राष्ट्रका अन्न खाता हुआ, अपनी जातिमें सम्मान प्राप्त करता हुआ भी राष्ट्र और जातिके लिये कुछ भी स्वार्थ त्याग नहीं करता, केवल अपने ही आनन्द लेनेमें मस्त रहता

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं उसे तो मैं कानकी खुजली मिटाने वाले तृणसे भी तुच्छ समझता हूँ। क्योंकि उस पुरुषसे तो इस तिनके का जीवन भी श्रेष्ठ है जो दूसरों की कण्डूव्यथा (खुजली) को तो शान्त करता है।

उस स्वार्थी पुरुषसे तो वह वृक्ष भी धन्य है जो छायासे पत्तों और शाखाओंसे भी इतनाहीं नहीं अपने रिक्त खोखलोंसे भी दूसरों को सुख दे रहा है, धन्य तो वही है जिसका अङ्ग प्रत्यङ्ग परोपकार या परसेवामें लगा हुआ है, पर उसका क्या जीवन है जो अपने ही आराममें मस्त पड़ा है।

उस स्वार्थी जीवन की अपेक्षा तो परोपकारमें मृत्यु भी हो जाय तो सर्वोत्तम है स्तुति योग्य है, वह मरने वालों का यश फैलाती है जो दूसरों को बचाते हुए—दूसरों की सेवा करते हुए प्राप्त हो जाती है। यह मृत्यु दूसरोंके लिये आदर्श भी हो जाती है।

अपने जीवनसे दूसरोंको सुख देने वालेभी कहीं-न कहीं मिल ही जायेंगे, परन्तु जिनकी मृत्यु दूसरोंको जीवन दान देनेके लिए हुई हो—मिलने असम्भव हैं।

इसलिए जीवनको सार्थक एवं सफल बनानेके लिये हमें दधीचि, शिवि और जीमूतवाहनकी तरह उसे परार्थ अर्पणकर देना चाहिए।

राष्ट्र और उसकी रक्षा

राष्ट्रस्य लक्षणं लक्ष्यं राष्ट्र-सम्मानवर्धनम्।
जातीयता च सद्भावो राष्ट्रार्थं प्राणवासिता ॥६२॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बन्धुताऽपि च राष्ट्रार्था राष्ट्रार्थं जीवनं भवेत् ।
मरणं चापि राष्ट्रार्थं न राष्ट्रविपरीतता ॥६४॥
सर्वाणि शुभकार्याणि राष्ट्रसंवृद्धिहेतवे ।
देवपूजाऽपि राष्ट्रार्था सर्वं राष्ट्रार्पणे भवेत् । ६५॥
आर्याः शिष्याः (सिख) जैनबौद्धाः यवनाश्च यहूदिनः ।
ईसवीयाः पार्श्वगाश्च सर्वे वै सन्तु राष्ट्रियाः ॥६६॥
राष्ट्रस्य ज्येष्ठतासिद्धयै कनिष्ठैर्भूयतां समैः ।
ज्येष्ठता नः प्रिया चेत्स्यात् राष्ट्रं ज्येष्ठं न सम्भवेत् ॥६७॥
शत्रोराक्रमणे हस्तौ पादौ सगम्य यत्नतः ।
देहरक्षां प्रकुर्वन्ति राष्ट्ररक्षा तथा भवेत् ॥६८॥
राष्ट्रे तिष्ठन् तदन्नं च भुञ्जानश्चेद् भवेदरिः ।
राष्ट्रान्निष्कास्यतां राज्ञा, सोऽन्यथा राष्ट्रनाशकृत् ॥६९॥
तस्माद्राष्ट्रहितार्थाय सर्वैः संयत्नता सदा ।
राष्ट्रे संरक्षिते सर्वं रक्षितं सम्भविष्यति ॥७०॥
स्वराज्ये सर्वसौख्यानां वृद्धिः संजायते यतः ।
तस्मात्स्वराज्यं स्वाराज्यं तत्प्रयत्नेन रक्ष्यताम् ॥७१॥

राष्ट्रकी रक्षा ही हमारा प्रधान लक्ष्य होना चाहियें । दूसरा लक्ष्य राष्ट्रका सम्मान बढ़ाना हो, जातीयता, प्रांतीयता, बन्धुता आदि सबकुछ राष्ट्रहितके लिए ही होना चाहिए, इतनाही नहीं, जीवन और मरण भी राष्ट्रहितके लिए ही हो। किन्तु राष्ट्रके प्रतिकूल कोई काम न होना चाहिये। यहां तक कि हमारे देव

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पूजा आदि सभी शुभकर्म भी राष्ट्रार्पण होते हुए, उसकी उन्नतिके लिए हों। इसी त्यागको ब्रह्मार्पणसे भी उत्तम समझना चाहिए, क्योंकि ब्रह्मार्पणमें भी हम मोक्षकी स्वार्थ-भावना पाते हैं, इसलिये राष्ट्रार्पण करना उससेभी कहीं बढ़कर है, जोकि केवल राष्ट्रिय प्रजाकी सुख-समृद्धिके उद्देश्यसे किया जाता है।

अतएव भारतकी सभी जातियों—आर्य, सिक्ख, जैन, बौद्ध, यहूदी, मुसलमान, ईसाई और पारसी सबको राष्ट्रहितमें—उसे अपना धर्म समझकर—तत्पर हो जाना चाहिये।

यदि भारतको ज्येष्ठ और सर्वश्रेष्ठ बनाना हो तो इसके लिए हमें संसारमें सबसे छोटा (सेवक) बनकर कार्यकरना चाहिये, अन्यथा हमारे देशकी ज्येष्ठता और श्रेष्ठता असम्भव है।

हमारा वैयक्तिक-जीवन स्तर इतना ऊँचा और आदर्श रूप होकि हम हरप्रकार अपने राष्ट्रकी मान-मर्यादाको सुरक्षित रखनेका एक मात्र कारण बनसकें और राष्ट्र सम्मानकोही अपना वैयक्तिक-सम्मान समझें।

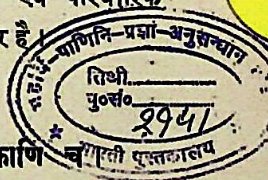
यदि हममें जातीयताकी भावना होतो वह अनुचित नहीं, लेकिन उसका एकमात्र उद्देश्यभी राष्ट्रहितही हो, नकि पारस्परिक भेद-भाव उत्पन्न करना, इससे तो देश विभाजित हुआ है इसी प्रकार प्रान्तीयताभी यदि प्रांतहित या राष्ट्रहितकी भावनासे हो तो ठीक है, अन्यथा प्रान्तभाषा आदिके कारण कहीं अन्य प्रान्तों या राष्ट्रसे विद्वेषकी भावना न उभड़ जाय, अतः प्रान्तीय संगठनभी राष्ट्रकी ही सहायता और उन्नतिको लक्ष्यकरके हो

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थात् प्रान्तीयता राष्ट्रीयताके आधार पर चले। एवं वन्धुता भी राष्ट्रहितकी दृष्टिसे अनुचित नहीं कही जा सकती, इसका अर्थ जातीय अथवा विरादरियोंसे है, ये राष्ट्रहितके लिए सैनिक टुकड़ियोंकासा कार्य कर सकती हैं। सारांश यह है कि इन सबका होनाभी ठीकही है, परन्तु, यह स्मरण रहे कि अङ्गीके जीवनपर ही अङ्गोंका जीवन निर्भर रहता है। अधिक क्यां? हमारा जीवन और मरणभी-राष्ट्रहितके लिएही हो। अन्यथा राष्ट्रके दुर्वल होनेपर हम कभी वलवान् नहीं हो सकते, राष्ट्रके पराधीन होने (मरने) पर हम कभी जीवित भी नहीं रह सकते।

राष्ट्र निवासियोंका सर्वप्रथम कर्तव्य यह होना चाहिये कि वे राष्ट्रकें आन्तरिक और वाह्य दोनों प्रकारके शत्रुओंसे उसे वचानेका निरन्तर प्रयत्न करते रहें, क्योंकि हमारी आर्थिक, नैतिक, सामाजिक, साहित्यिक, सांस्कृतिक एवं परिवारिक आदि सभी रक्षाएें उसी-राष्ट्ररक्षा पर ही निर्भर है।


पाणिनि-प्रज्ञा-अनुसन्धान
तिथी
पु०सं० २१५१
पुस्तकालय

भारतीय पर्व

पर्वाणि भारतीयानां संस्कृते रक्षकाणि च।
अन्योन्यस्नेहरागवृद्ध्यारोग्यप्रदानि च ॥ ७२ ॥
रक्षावन्धश्च विजयादशमी दीपमालिका।
होलिकेति च पर्वाणि ब्रह्मणादेः प्रधानतः ॥७३॥
वैशाखी चैव माघी च वासन्ती पञ्चमी तथा।
नवमी रामचन्द्रस्य कृष्णचन्द्रस्य चाष्टमी ॥७४॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शैवी चतुर्दशी तावत् प्रतिपच्चैत्रशुक्लगा ।
एतानि मुख्यपर्वाणि सर्ववर्णादृतानि वै ॥७५॥
दीपावल्यां च वैशाख्यां नव्यवस्त्रविधारणम् ।
अन्योन्यालिङ्गनं प्रातः सुहृदोः स्नेहवर्धनम् ॥७६॥
वैमनस्यमपाकृत्य सौमनस्यविवर्धनम् ।
कनिष्ठो ज्येष्ठपत्स्पर्शी ज्येष्ठ आशीर्विवर्धकः ॥७७॥
प्रसन्नवदनाः सर्वे दुःखशोकापसारकाः ।
सुगन्धदानैः कालाभिस्ताम्बूलैः सत्क्रिया भवेत् ॥७८॥
मिष्टान्नैर्जलपानैर्वा परस्परविरोचनम् ।
इत्थं पर्वादरादेव राष्ट्रे शक्तिः प्रवर्धते ॥ ७९ ॥

भारतीय पर्वभी आर्य संस्कृतिके रक्षक हैं, परस्पर स्नेह, प्रीति, बुद्धि और आरोग्यदायक हैं। इन पर्वोंमें चार मुख्य पर्व ये हैं—रक्षाबन्धन, विजयादशमी, दीपमालिका और होली। ये चार पर्व क्रमसे चारों वर्णोंके लिए हैं, जो आजभी अपनी-अपनी वर्ण-संबन्धी विचार धाराके परिचायक हैं। वैशाखी, माघी, वसन्त पञ्चमी, रामनवमी, कृष्णजन्माष्टमी, शिव चतुर्दशी और चैत्रशुक्ल प्रतिपदा (संवत्) सात पर्व सभी वर्णोंमें समान रूपसे मनाए जाते हैं।

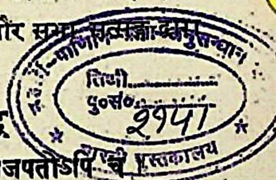
इन पर्वोंमें विशेषकर वैशाखी और दीपावलीमें नवीन वस्त्रों को धारण करना मित्रोंका परस्पर आलिङ्गन, हृदयके वैमनस्य को हटाकर परस्परमें सौमनस्योत्पादन हो। इनमें छोटोंका

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
चड़ोंके पाँव छूकर सत्कार करना बड़ोंका उन्हें आशीर्वाद देना, सबको अपने-अपने दुःखोंको भूलकर, प्रसन्न चित्त होकर परस्पर का गन्ध, माला, ताम्बूल, मिष्टान्न और जलपान आदि प्रचारोंसे सत्कार करना जहां परस्परानुरागवृद्धिका कारण बनता है वहां राष्ट्रशक्ति भी समृद्ध होती है।

गविवारोऽपि चाऽऽर्याणां संस्कृतौ पर्ववन्मतः।
म विश्रम–नवोत्साह–स्नेह–संघटनावहः ॥८०॥

आर्य्यसंस्कृतिमें रविवार भी एक पर्व माना गया है इसमें विश्रामपूर्वक नवीन उत्साह परस्पर प्रेम और सभा सत्संग द्वारा संघटवशक्ति प्राप्त करनी चाहिये।



बुद्धि की शुद्धि

बुद्धिर्ज्ञानैः शोधनीया गायत्रीजपतोऽपि च।
सा हि धर्मार्थकामार्थं मुक्तार्थं साधनं भवेत् ॥८१॥
धर्मादर्थस्ततः कामः कामत्सुखसमुन्नतिः।
बुद्ध्या त्रिवर्गं संसाध्य ततो मोक्षे मनोनयेत् ॥८२॥
दुर्लभं जन्म मानुष्यं महापुण्यैरवाप्यते।
लब्ध्वा तन्न पुनर्नेयं व्यर्थतां सुखमीप्सुना ॥८३॥

संसारके छोटे-बड़े सभी काम बुद्धि द्वारा ही सिद्ध होते हैं, इसलिए सर्वप्रथम बुद्धिकी शुद्धि आवश्यक है। मनुके दस धर्मोंमें यह भी एक धर्म है, शास्त्रादिके अध्ययनसे बुद्धिकी शुद्धि और वृद्धि होती है तो गायत्रीके जपसे उसका विकास और परिष्कार होता है।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतीय संस्कृतिमें धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चारोंको प्राप्त करना मुख्य माना गया है। अतः लौकिक और वैदिक दोनों प्रकारके साधनों द्वारा उसे सुन्दर बनाना चाहिये। बहुत पुण्योंसे मानवजीवन प्राप्त होता है अतः इसे केवल सांसारिक सुखोंका साधन ही नहीं बनाना चाहिये। प्रत्युत पारलौकिक सुखोंके लिये भी प्रयत्न करते रहना चाहिये इस बातका ध्यान रहे कि कहीं हम असत्य पदार्थको ही सत्यमानकर उसीमें न भूल जायँ, तब तो उन स्थूल बुद्धिवाले और स्थूलदर्शी पाश्चात्यविद्वानों या उनकी संस्कृतिसे प्रभावित लोगोंके समान बनकर अहंकार, ममता एवं विलास आदिमें अपना स[illegible] सुखमय जीवन खो बैठेंगे इसलिये हमें अपनी भारतीय संस्कृति को कदापि नहीं भुलाना चाहिये प्रत्युत पदे-पदे हमें उसका ह[illegible] आश्रयण करना चाहिये।

इत्थं सर्वैर्वर्णं पुम्भिराश्रमेषु चतुर्ष्वपि।
स्वीया चर्य्या समाधेया यथा प्राज्यं भवेत् सुखम् ॥८४॥

इसी प्रकार सभी वर्णोंको अपने-अपने आश्रमोंमें नियम पूर्वक रहते हुए आदर्श जीवन चर्य्या बनानी चाहिये। जिससे हमें इस जीवनमें सुख तो मिले ही, साथ ही साथ पारलौकिक जीवन भी सुखमय हो। लेकिन, स्मरण रहे कि हमारे किसी भी कार्य्य द्वारा राष्ट्रके किसी भी कार्य्यमें विघ्न न पड़े, प्रत्युत राष्ट्रकी शुभकामना भी निरन्तर तन और मन दोनों से होती रहे।

इति वर्ण प्रकरणम्। इति पूर्व भागः।

—:※:—

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

भारतीय धर्म शास्त्र

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri





CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.